बुनियादी शिक्षा

एक नई कोशिश

दिसम्बर 2010–फरवरी–2011

अंक – 29

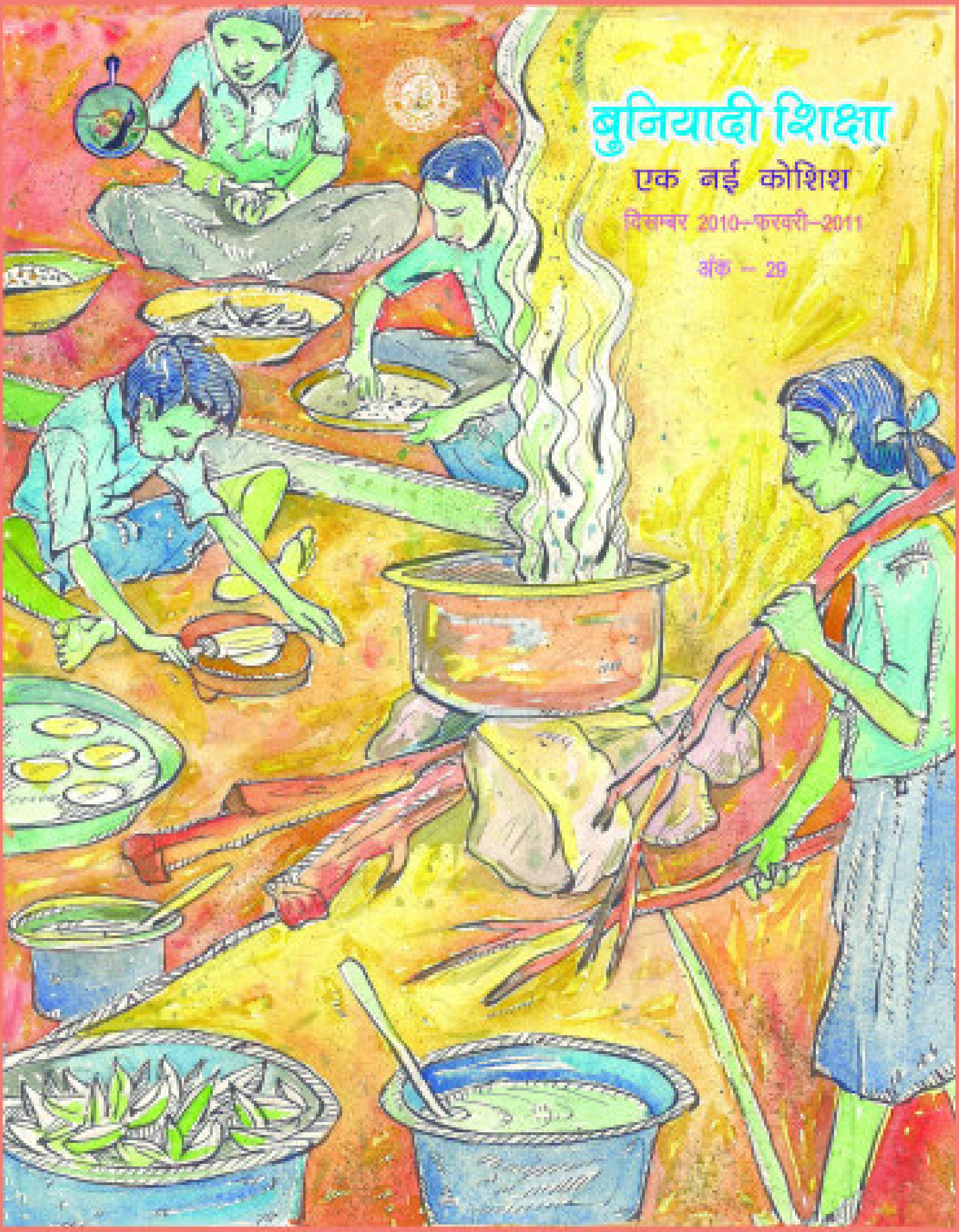

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

अंक–29

परामर्श
हृदय कांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

संपादक मण्डल
भागचंद कुमावत
वि.वि. सिंह
कुमार अनुपम

सलाहकार
एम.पी. शर्मा
गोविन्दभाई रावल
भरत जोशी

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

कंप्यूटर सेटिंग
इसरार अहमद

टाइपिंग सहयोग
शाकिर अहमद

संपादकीय पता
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsadr@yahoo.com

इस अंक में

संपादकीय	1
चिट्ठी–पत्री	2
विज्ञान और अध्यात्म के बीच समन्वय **दयालचंद सोनी**	3
एक यात्रा–नई तालीम के साथ **ज्योतिभाई देसाई**	11
नयी तालीम की नयी दिशा **गोविन्दभाई रावल**	20
शोषण रहित समाज की रचना **पवन कुमार गुप्ता**	25
बुनियादी शिक्षा में शिक्षक की भूमिका **वि.वि. सिंह**	28
शिक्षा के अधिकार के लिए सत्याग्रह **भाई वैद्य**	32
डायरी के पन्ने (बचपन) **सहनाज वी.के.**	36
गतिविधि के नमूने	38

इस अंक की सहयोग राशि व्यक्तिगत डाक/कुरियर खर्च सहित : 50 रुपए, वार्षिक– 200/– रुपए तथा संस्थागत वार्षिक सहयोग राशि 400/–रुपए
चैक/ड्राफ्ट – विद्या भवन सोसायटी के नाम से भिजवाएं।

सौजन्य : राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद्, हैदराबाद

संपादकीय

बुनियादी शिक्षा/तालीम का विचार लगातार रूप से विकसित होनेवाला शैक्षिक विचार है। यह विचार निरन्तर है और परिवर्तित परिस्थितियों में भी हर देश–काल में प्रासंगिक हो सकता है। इसके सिद्धान्त किसी भी सदी में पुराने नहीं होंगे बशर्ते उनकी समझ को जड़ न कर दिया जाए। इस शैक्षिक विचार के सिद्धान्तों का मूल्य हर काल हर परिस्थिति में और हमेशा रहेगा। बुनियादी शिक्षा दर्शन की जितनी गहराई में हम जाएंगे, उतनी ही सार्थक परिस्थितियां अनुकूल अर्थ पाएंगी। यदि हम बुनियादी तालीम के तत्त्वों और सिद्धान्तों की मीमांसा करें तो हमें ज्ञात होगा कि ये विचार शाश्वत क्यों हैं। विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में विकसित सीखने–सिखाने की अवधारणाओं पर विचार करें, जैसे बाल केन्द्रित शिक्षा, करके सीखना, सहज शिक्षा, गुणात्मक शिक्षा आदि तो हम पाएंगे कि ये सभी अवधारणाएं, बुनियादी शिक्षा के विचार में गुंथी हुई हैं। केवल उन्हें हमें समझने की ज़रूरत है। जितना गहरा गोता बुनियादी शिक्षा के विचार में हम लगाएंगे उतना ही उसे हम इन रूपों को पाएंगे।

आज के इस उदारीकरण व वैश्वीकरण के माहौल में शिक्षा व्यवस्था ही ऐसी हो गयी है जिसमें, अभिभावक बच्चों को मजबूरन गलाकाट प्रतिस्पर्धा में झोंक देते हैं। ऐसी परिस्थिति में बुनियादी तालीम का विचार ही एकमात्र सहारा रह जाता है। बुनियादी शिक्षा में प्रतियोगिता नहीं है वरन् सहयोग एवं स्वावलम्बन है। बच्चों को साथ काम करके सीखना है। अपने आपसे बेहतर करना है। बच्चे की प्रगति को समाज के साथ जोड़कर देखना है।

बुनियादी शिक्षा/तालीम की प्रासंगिकता को हम आज़ादी के बाद में स्कूली शिक्षा में परिवर्तन लाने के संदर्भ में बने जितने भी शिक्षा आयोग/कमिटियां बनी हैं, उनमें हम देख सकते हैं, लगभग सभी आयोगों ने गांधी शिक्षा विचार को आधारभूत आधार माना है।

वर्तमान में यहां हम एनसीएफ 2005 तथा भारत सरकार के शिक्षा अधिकार के अधिनियम/कानून 2009 को देख सकते हैं। इन दोनों ने गांधी शिक्षा विचार की दृष्टि पर पुनः मुहर लगायी है।

आज ज़रूरत इस बात की है कि हम इसके (बुनियादी शिक्षा के) अतिआदर्शवादी स्वरूप पर अधिक आग्रह न करें। व्यावहारिक दृष्टि से आज की परिस्थिति में, आज की शिक्षा व्यवस्था में बुनियादी तालीम के सिद्धान्तों और तत्त्वों का हम कैसे उपयोग करें और क्या करें कि यह सबके लिए संभव हो जाय, इस पर चिन्तन करें। इस संवाद को आगे बढ़ाने के लिए विद्या भवन इसी दिशा में काम करने की कोशिश कर रहा है। इसलिए इस पत्रिका का नाम भी 'बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश' रखा गया है। आशा है कि आप सभी इस कोशिश में साथ जुड़ेंगे।

चिट्ठी–पत्री

अंक 28 'बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश' रुचिकर लगा।

गांधीजी के व्यक्तित्व, कार्य का मिशन व मानव धर्म में अटूट आस्था ने उनकी बुनियादी शिक्षा की सोच को प्रभावित किया था। हर प्रयत्न कर, इसे आगे बढ़ाना मानव समाज व पर्यावरण के हित में है। मानव मूल्य व प्राथमिकताओं के बदलते दौर में, इसमें व्यावहारिकता लाना आवश्यक है। आज का दौर, भावुकता में बहने व हर क़ीमत पर परम्पराओं से चिपके रहने का नहीं है, यही सार व गूढ़ चिन्तन है 'बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश' के ''आज के संदर्भ में बुनियादी शिक्षा को समझना'' आलेख में। इसकी सटीक प्रस्तुति के लिए श्री दीवान बधाई के पात्र हैं।

प्रकृति स्वयं एक खुली किताब है और एक अद्वितीय शिक्षिका भी है। बालमन को प्रकृति से जोड़ने का प्रयास, मानवता व मानवीय मूल्यों की शिक्षा से जोड़ने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। निर्मल बालमन में आस–पास की प्रकृति के प्रति असीम जिज्ञासा व आकर्षण होता है। इसलिए हमारा कार्य, सिर्फ़ सही अवसर पर बच्चे की मनःस्थिति को देखकर, उसे प्रकृति से जोड़ना है। इस दिशा में श्रीमती वि.वि. सिंह के द्वारा किया गया प्रयास अच्छा लगा।

गणित जैसा नम्बर, गिनती, रटना इत्यादि का विषय हर बच्चे के लिए किस प्रकार रुचिकर बनाया जा सकता है? बच्चे स्वयं एक नम्बर बनकर मनोरंजन, एक्शन, उठापटक, हंसी मज़ाक व खेल खेलते हैं। इस प्रकार गणित के साथ आस–पास की वस्तुओं से परिचय व जानकारी के साथ बच्चे आनन्द उठाते हैं व सीखते हैं वाह– वाह श्री ज्योतिभाई द्वारा किया गया यह प्रयास अनूठा व अच्छा लगा।

शुभकामनाओं के साथ।

डॉ. विनया पेण्डसे
10–11, बनेरा हॉउस, फतहपुरा, उदयपुर– 313004
फोन नं. : 2529190

'बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश' का 26–27 अंक मिला। सारी सामग्री बढ़िया है। शिक्षा पर ऐसी चीज़ें पढ़कर आस्था पैदा होती है।

मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

प्रेमपाल शर्मा
संयुक्त सचिव
रेल मंत्रालय, रेलवे बोर्ड, नई दिल्ली

विज्ञान और अध्यात्म के बीच समन्वय

★ दयालचन्द्र सोनी

गत अंक में 'विज्ञान और अध्यात्म के बीच समन्वय' के अन्तर्गत विज्ञानवादियों और धर्मवादियों द्वारा बुनियादी तालीम पर लगाए गए परस्पर–विरोधी आरोप व इन आरोपों के मूल्यांकन के कुछ हिस्से को प्रस्तुत किया गया था। आगे का हिस्सा इस अंक में प्रस्तुत किया जा रहा है।

विज्ञान के विषय में कई भ्रांतियां या काम कर रही हैं, पहली यह है कि विज्ञान जो कुछ आज है, उससे भिन्न वह हो ही नहीं सकता और दूसरी यह है कि जिस दिशा को आज उसने ग्रहण कर रखा है, उससे भिन्न दिशा विज्ञान को दी ही नहीं जा सकती। तीसरी भ्रांति विज्ञान के विषय में यह है कि विज्ञान की जो उन्नति आज हो चुकी है, वही अंतिम है और आगे विज्ञान की उन्नति नहीं होगी।इसके सिवा विज्ञान के विषय में एक और भ्रांति यह है कि जो कुछ भौतिक है, उसी का विज्ञान में दखल होना चाहिए। विज्ञान के लिए एक समग्र दृष्टि हो सकती है, जो कि केवल भौतिक पहलू से नहीं; बल्कि मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और नैतिक आदि सभी दृष्टियों से विचार करे और तदनुरूप ही विज्ञान की उन्नति करे, ऐसा अभी तक हम नहीं सोचते। यह एक बड़ी ग़लती है। आज तो विज्ञान इस परिणाम पर पहुंच चुका है जिसे भौतिक वस्तु या पदार्थ कहा जाता है, उसका वास्तविक अस्तित्व है ही नहीं और जो कुछ है, वह केवल भ्रांति या माया है, जैसा कि शंकराचार्य ने कहा था। अतः भविष्य का विज्ञान यदि एक भिन्न और समग्र दिशा ग्रहण करे, तो इसमें आश्चर्य क्या? बुनियादी शिक्षा या सर्वोदय या गांधी–विचार में जो विज्ञान है, वह शायद ऐसा विज्ञान है, जो धरती पर अब भविष्य में पनपेगा। तो, बुनियादी शिक्षा को अवैज्ञानिक या प्रतिगामी नहीं कहा जा सकता है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि वह उस दिशा का संकेत करती है, जिसमें विज्ञान को अब उन्नति करनी चाहिए। वर्तमान में विज्ञान की सहायता से जो औद्योगिक क्रांति संसार में हुई, उसने मनुष्य को शोषण से मुक्त करने में या

वर्तमान में विज्ञान की सहायता से जो औद्योगिक क्रांति संसार में हुई, उसने मनुष्य को शोषण से मुक्त करने में या उसे मानसिक शांति देने में कोई ख़ास सहायता नहीं दी, बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि उसने एक इंसान द्वारा दूसरे इंसान का शोषण बढ़ा दिया है। यह कहना भी सही होगा कि मनुष्य के जीवन में उसने पहले से अधिक मानसिक अशांति और उद्वेग को जन्म दिया है।

★ स्व. श्री दयाल चन्द्र सोनी, 1941 में स्थापित विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक थे।

उसे मानसिक शांति देने में कोई ख़ास सहायता नहीं दी, बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि उसने एक इंसान द्वारा दूसरे इंसान का शोषण बढ़ा दिया है। यह कहना भी सही होगा कि मनुष्य के जीवन में उसने पहले से अधिक मानसिक अशांति और उद्वेग को जन्म दिया है। इसका कारण यह है कि अब तक विज्ञान ने केवल तेज़ रफ़्तार और अधिक–से–अधिक भीमकाय और अधिक–से–अधिक केन्द्रित यंत्रों पर बल दिया है। इसके बजाय अब विज्ञान यदि यह प्रयत्न करे कि मनुष्य को उसके छोटे समुदाय में ही आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक यंत्रों का आविष्कार किया जाय, तो विज्ञान एक नयी दिशा ग्रहण करके मनुष्य का बहुत भला कर सकता है। चरखे का विज्ञान यह नहीं कहता कि चरखे की रफ़्तार मत बढ़ाओ। चरखे में जो सिद्धान्त की बात है, वह यही है कि मनुष्य कपड़े जैसी जीवन के लिए अनिवार्य वस्तु के विषय में बड़ी–बड़ी मिलों पर आश्रित रहने के बजाय छोटे समुदाय में या गांव में आत्मनिर्भर बनना चाहिए। अब विज्ञान का यह काम है कि चरखे का ऐसा बढ़िया और कारगर नमूना तैयार करे कि वह आज के युग में व्यक्ति को पुसा सके यानी इतना उत्पादन कर सके कि यदि एक व्यक्ति उस पर काम करे, तो उसे आज के भाव या आज की दरों से गुज़ारे के लायक रोज़ी मिल जाय। अब यदि बुनियादी शिक्षा या सर्वोदय या अहिंसावाद यह कहे कि विज्ञान से हमें दुश्मनी है, तो न तो बुनियादी शिक्षा जी सकती है, न सर्वोदय जी सकता है और न अहिंसा ही रह सकती है। अहिंसा विज्ञान की सहायता लेकर ही जी सकेगी और विज्ञान भी अहिंसा की सहायता लेकर ही जी सकेगा। यदि विज्ञान अहिंसा से समन्वय किये बिना ही उसी सड़क पर अंधा होकर

बढ़ता रहेगा, जिस पर वह आज बढ़ रहा है, तो विज्ञान आत्महत्या करके समाप्त हो जानेवाला है। इसलिए जो लोग यह देखते हैं कि गांधी विचार और बुनियादी शिक्षा में ही विज्ञान की रक्षा तथा विज्ञान का भविष्य उज्ज्वल है, वे ही यथार्थ हैं और जो लोग ऐसा मानते हैं कि बुनियादी शिक्षा विज्ञान या भौतिकवाद की विरोधिनी है, वे बुनियादी शिक्षा को नहीं समझते।

धर्म के विषय में दृष्टिकोण

धर्म के विषय में भी हमारे देश में कुछ उसी प्रकार की भ्रांति प्रचलित है, जैसी कि विज्ञान विषय में प्रचलित है, और यही ख़ास कारण है कि लोगों को बुनियादी शिक्षा में धर्म की शिक्षा नहीं दिखाई देती, जबकि बुनियादी शिक्षा एड़ी से चोटी तक धर्म की शिक्षा ही है। धर्म के विषय में ज़बर्दस्त भ्रांति हमारे बीच यह है कि धर्म मंदिर, मस्जिद, गिरजा, पूजा, नमाज़, उपासना, कंठी, माला, तिलकछापा, व्रत–उपवास, रोज़े, तीर्थ, हज, पर्व, त्योहार, रीति–रिवाज़, रूढ़ि–परंपरा, नाम, पोशाक, छूत–छात, जाति–पांति, भाषा, लिपि आदि का प्रश्न है। इस भ्रांति से जितनी जल्दी हम मुक्त हों और धर्म के असली स्वरूप को हम जितना जल्दी समझें, उतना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।

प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो दिव्य आत्मतत्त्व है, जिसे अंतरात्मा या सद्विवेक कहा गया है, जिसे अंग्रेज़ी में 'कान्शन्स' कहा जाता है, अथवा जिसे हम प्रत्येक मनुष्य में पाया जानेवाला पारस्परिक एकता का तत्त्व कह सकते हैं, जिसके कारण से हमें दया, सत्य और प्रेम के कामों में आन्तरिक प्रसाद और शांति मिलती है और चोरी, हत्या या अन्य बुरे काम करते समय आत्मग्लानि अनुभव होती है,जो जन्म से मृत्यु तक निरंतर हमारे साथ है, जिसके अस्तित्व के कारण ही हम अपने से भिन्न प्राणियों में अथवा समूचे चराचर विश्व में तादात्म्य का अनुभव करते हैं, जिसके कारण मनुष्य–जाति में समाज का निर्माण हो सका, जिसके कारण कानून बन सके, जिसकी प्रेरणा से मनुष्य मनुष्य है, वह अंतर्यामी तत्त्व ही धर्म है। इस धर्म के कारण ही व्यक्ति और समाज की धृति या धारणा संभव है और इसी कारण इसे धर्म कहा गया है। व्यवहार में धर्म इस बात का नाम है कि मनुष्य अपनी अंतरात्मा की आवाज़ सुन सके, समझ सके और तदनुसार आचरण करने को स्वतंत्र हो तथा वास्तव में तदनुसार ही आचरण कर सके। धर्म इस बात में है कि आप दूसरे मनुष्य या दूसरे प्राणी के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। धर्म इस बात में नहीं है कि आप किस तरह पूजा करते हैं, किस तरह माला फेरते हैं, कौन से तीर्थ की यात्रा करते हैं, आप तेरहपंथी हैं या बारहपंथी, इस प्रश्न के उत्तर को धर्म नहीं कहते। धर्म तो इस प्रश्न के उत्तर को कहते हैं कि आप दूध में पानी और घी में डालडा मिलाकर ग्राहकों को ठगते हैं या नहीं, आप ग़रीबों से चार रुपया सैकड़ा ब्याज लेकर उसकी जायदाद ज़ब्त करने की फ़िराक़ में हैं या नहीं, आप नौकरी करते समय सरकार या संस्था के धन का

धर्म इस बात में है कि आप दूसरे मनुष्य या दूसरे प्राणी के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। धर्म इस बात में नहीं है कि आप किस तरह पूजा करते हैं, किस तरह माला फेरते हैं... धर्म तो इस प्रश्न के उत्तर को कहते हैं कि आप दूध में पानी और घी में डालडा मिलाकर ग्राहकों को ठगते हैं या नहीं...

अपने लिए बेजा लाभ उठाते हैं या नहीं, आप वचन देकर किसी को धोखा तो नहीं देते, आप कम तो नहीं तौलते हैं, आप बिना टिकट रेल में सफ़र तो नहीं करते हैं, आप रुपया उधार लेकर उसे लौटाने की नीयत रखते हैं या उसे हड़प जाने की नीयत रखते हैं, जिस काम पर आप नियुक्त हैं, क्या आप उस काम के प्रति पूरी तरह वफ़ादार हैं, आप अपने किसी साथी या संगी का हक़ मारकर नौकरी में उससे आगे बढ़ जाने के लिए सिफ़ारिश तो नहीं कराते हैं, आप अपने अफ़सर की ख़ुशामद करके उससे बेजा लाभ तो नहीं उठाते, आप अपने स्वार्थ के कारण ऐसा काम तो नहीं करते, जिसके विषय में आप जानते हैं कि इससे दूसरे पर अन्याय हो रहा है, क्या आप 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का अनुभव करते हैं, क्या आप तदनुसार आचरण करते हैं, ये हैं वे प्रश्न, जिनके उत्तर धर्म या अधर्म से संबंध रखते हैं।

जब हम यह कहते हैं कि अमुक तो हिन्दू है, अमुक मुसलमान है, अमुक ईसाई है, तो हम धर्म की बात बिलकुल नहीं करते, धर्म तो एकत्व के दर्शन को कहते हैं। हिन्दू–मुस्लिम, ईसाई की बात तो पृथक्ता की द्योतक है। जो पृथक्ता बताता है, वह अधर्म है और जो एकता बताता है, वह धर्म है। तू, मैं और वह ये तीनों एक ही हैं, इस अनुभव को धर्म कहते हैं। मैं तुझे कष्ट या धोखा न दूंगा, क्योंकि तू और मैं एक ही हैं। मैं उसे कष्ट या धोखा न दूंगा, क्योंकि वह और मैं एक ही हैं। इस व्यवहार को धर्म कहते हैं। सत्य इसलिए धर्म है कि असत्य से एकता की हत्या होती है, चोरी इसलिए अधर्म है कि चोरी से एकता खंडित होती है, हिंसा इसलिए अधर्म है कि हिंसा से एकता खंडित होती है। जिस व्यवहार में यह अनुभूति काम करती हो कि जिसके प्रति मैं व्यवहार कर रहा हूं, वह और मैं एक ही हैं, उस व्यवहार को धर्म कहते हैं। जितना अनर्थ हो रहा है, वह इस कारण कि हमने धर्म को जीवन के पारस्परिक व्यवहार में लाने की चीज़ न मानकर किसी स्थान–विशेष और किसी समय–विशेष की पृथक् वस्तु बना दिया। अधिकांश यह होता है कि सुबह एक घड़ी भगवान् के नाम की माला जपते हैं और दिन में अपने धंधे में जी भरकर और निःसंकोच बेईमानी करते हैं। किसी भले आदमी को जब हम ठग लेते हैं, तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर ने आज हम पर बड़ा अनुग्रह किया है। हम ईश्वर को इसके लिए धन्यवाद देते हैं और भविष्य में भी इसी तरह का मौक़ा और देने के लिए उससे प्रार्थना करते हैं। क्या यह धर्म है? हममें से कोई–कोई ऐसे भी हैं, जो धर्म के नाम पर मछली का मांस नहीं खायेंगे, अंडे खाने से परहेज़ और नफ़रत करेंगे, पर मनुष्य का खून चूस लेने में जिनको कोई झिझक भी न होगी। क्या यह धर्म है?

अधिकांश यह होता है कि सुबह एक घड़ी भगवान् के नाम की माला जपते हैं और दिन में अपने धंधे में जी भरकर और निःसंकोच बेईमानी करते हैं। किसी भले आदमी को जब हम ठग लेते हैं, तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर ने आज हम पर बड़ा अनुग्रह किया है। हम ईश्वर को इसके लिए धन्यवाद देते हैं और भविष्य में भी इसी तरह का मौक़ा और देने के लिए उससे प्रार्थना करते हैं। क्या यह धर्म है?

यहां कोई यह ख़याल न करे कि मैं मछली खाने या अंडे खाने की सिफ़ारिश कर रहा हूं या कि मैं यह कह रहा हूं कि मनुष्य को माला नहीं फेरनी चाहिए या कि तीर्थ–व्रत, पूजा–पाठ, जप इत्यादि नहीं करना चाहिए या कि ऐसा करना धर्म के विरुद्ध या

धर्म के बाधक हैं। मैं तो यह कहना चाहता हूं कि धर्म या अधर्म को इन बाहरी बातों में मत देखिए। धर्म को जीवन में पारस्परिक व्यवहार की वस्तु बनाइए, तभी धर्म धर्म होगा।

किस प्रकार बुनियादी शिक्षा धार्मिकता से ओतप्रोत है?

बुनियादी शिक्षा किस प्रकार धार्मिकता से ओतप्रोत है, यह निम्नलिखित बातों से स्पष्ट है :– धर्म को ऐसा प्रयत्न माना जाय, जो मनुष्य को मानवता सिखाता और सुधारता है। बुनियादी शिक्षा सब मनुष्यों की हस्ती को समान रूप से पवित्र मानती है। बुनियादी शिक्षा सब मनुष्यों को न केवल समान मानती है, बल्कि सबको मूलतः एक ही और अभिन्न यह चाहती है कि व्यक्ति यह समझ जाय कि उसका शिक्षाजनित व्यक्तित्व तो दृश्य है और वह स्वयं एक द्रष्टा है और इस प्रकार अपने प्रति वह आसक्त न होकर आध्यात्मिक दृष्टि से अनासक्त हो जाय। बुनियादी शिक्षा ऐसी शिक्षा है, जो व्यक्ति को शिक्षा के विषय में किसी अन्य शिक्षक को सदैव के लिए मुहताज़ नहीं रखती, बल्कि जिसका मक़सद यह है कि हर व्यक्ति अपना शिक्षक अंततोगत्वा स्वयं ही बने। इस दृष्टि में भावना यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने में स्वयं एक साध्य है और वह किसी और का साधन नहीं है कि कोई अन्य उसे गुप्त मनोवैज्ञानिक चातुर्य के बाल पर मनमाने सांचे में ढाल दे। यदि इन सब बातों के रहस्य को हमने ठीक से समझा है, तो यह निश्चित है कि बुनियादी

परंपरित शिक्षा, शोषण के द्वारा शोषण की शिक्षा थी, भेड़–वर्ग से निकलकर भेड़िया–वर्ग में जा मिलने की तालीम थी। यह तालीम उन्हीं लोगों को मिल सकती थी, जिनके माता–पिताओं ने जनता का शोषण करके काफ़ी रुपया एकत्र कर रखा हो और जो उसे अपने बच्चों की शिक्षा पर ख़र्च कर सकें।

मानती है और इसीलिए सर्वोदय का विचार निकला है। तालीम सेवा के बदले मिलनी चाहिए, न कि ख़ैरात में या पैसे के बदले में। बुनियादी शिक्षा इस बात का प्रयत्न है कि मनुष्य के मन, वाणी और कर्म में एकता और सामंजस्य होना चाहिए, साथ ही जब मनुष्यों में मन, वचन और कर्म में एकता होती है, तभी व्यक्ति और समाज में भी सामंजस्य सिद्ध होता है और तभी कर्मयोग भी बनता है, जिसका प्रतिपादन गीता में किया गया है। अपनी अंतरात्मा के अनुसार आचरण और शिक्षण कर सकने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक स्वतंत्र हो और बुनियादी शिक्षा में यह व्यवस्था है कि शिक्षक स्वाधीनतापूर्वक शिक्षण कर सकने की स्थिति में आ जाय और बुनियादी शिक्षा शिक्षा एड़ी से चोटी तक मनुष्य को सुधारनेवाले धर्म से ओतप्रोत है और उसे शिक्षा में धार्मिकता की क्रांति कहा जाना सर्वथा समीचीन है।

बुनियादी शिक्षा में धार्मिकता के तत्त्व भरे हुए हैं, परंपरित शिक्षा में एड़ी से चोटी तक अधार्मिकता व्याप्त थी। परंपरित शिक्षा, शोषण के द्वारा शोषण की शिक्षा थी, भेड़–वर्ग से निकलकर भेड़िया–वर्ग में जा मिलने की तालीम थी। यह तालीम उन्हीं लोगों को मिल सकती थी, जिनके माता–पिताओं ने जनता का शोषण करके काफ़ी रुपया एकत्र कर रखा हो और जो उसे अपने बच्चों की शिक्षा पर ख़र्च कर सकें और इस तालीम का मक़सद भी यह

था कि सरकार की ऊंची नौकरियां हाथ लगें, जहां रहकर जनता पर हुकूमत की जा सके और जनता के पैसे पर ख़ूब ऐश–आराम मिल सके।

इस प्रकार परंपरित शिक्षा की अधार्मिकता और बुनियादी शिक्षा की धार्मिकता स्पष्ट है। जो भी लोग बुनियादी शिक्षा का काम करें, वे इस बात का ध्यान रखें और धार्मिक निष्ठा के साथ इसका काम करें।

उद्योग, समवाय और स्वावलंबन में धार्मिकता

बुनियादी शिक्षा में उद्योग का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, वह धार्मिक है। उद्योग का अर्थ है सेवा, उद्योग का अर्थ है 'लोकसंग्रह' में अपना भी यत्किंचित् योग देना, उद्योग का अर्थ है बाल्यकाल से ही अशोषण का अभ्यास। इसके सिवा उद्योग का अर्थ है सृजनात्मक आनन्द, उद्योग का मतलब है मनुष्य की वृत्तियों का मांगल्यीकरण। उद्योग का मतलब है श्रम की प्रतिष्ठा और उद्योग का अर्थ है, जन–जीवन के साथ तादात्म्य, उद्योग का मतलब है इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव करना कि जनसाधारण का या श्रमिकों का जीवन कैसा होता है, ताकि श्रमिकों को निम्न समझने या उनका शोषण करने की प्रवृत्ति दूर हो। ये सब बातें धार्मिक हैं। बेशक इसमें उस धनपति सेठ को धार्मिकता नहीं दिखाई देगी, जो कि एक मंदिर के 'विवाह' के अवसर पर, ध्वजा चढ़ाने के नीलाम में हज़ारों रुपयों की बोली लगाकर जीतता है और मंदिर पर ध्वजा चढ़ाकर तथा उस उपलक्ष्य में हाथी की सवारी निकालकर ऐसा महसूस करता है कि उसके समान कोई दूसरा धार्मिक व्यक्ति उस समुदाय में नहीं है, चाहे उसने हज़ारों रुपयों के उस धन को कितने ही ग़रीबों का ख़ून चूसकर एकत्र किया हो। पर आज आवश्यकता इस बात की है कि मंदिर पर ध्वजा चढ़ाने का हक़ हासिल करने के लिए जो हज़ारों रुपयों की बोली लगाकर जीत सके, उसे धार्मिकता का सम्मान देने के बजाय उस व्यक्ति को धार्मिक होने का सम्मान प्राप्त हो जो पसीने की कमाई खाता हो और अनुचित परिग्रह न करता हो।

इसी प्रकार समवायी शिक्षण–पद्धति में केवल मनोविज्ञान नहीं देखा जाना चाहिए। समवायी शिक्षण–पद्धति का एक बड़ा लक्ष्य यह है कि मनुष्य के ज्ञान, मनुष्य की भावना और मनुष्य के कर्म में एकता सिद्ध हो, यह धार्मिक बात है, धार्मिक साधना है। समवाय का दूसरा लक्ष्य यह है कि विद्यार्थी यह आध्यात्मिक योग्यता प्राप्त करे कि वह अपने शिक्षा जनित व्यक्तित्व को अनासक्त होकर देख सके, वह जान सके कि किस संस्कार का उस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। वह जान सके कि आत्मा अकर्त्ता है और जो कुछ हो रहा है या किया जा रहा है, वह प्रकृति है। संक्षेप में जो यह देखते हैं कि समवाय का अभ्यास गीता के कर्मयोग का अभ्यास है और जो कि समवाय में आध्यात्मिक प्रशिक्षण का अवसर देखते हैं, वे ही लोग यथार्थ देखते हैं। धर्म के पालन

जो कुछ तुमने किया उसका स्मरण करो, उसे समझो, ताकि तुम अपने को ठीक तरह समझ सको और विकारों से धोखा न खाओ। यह उपदेश समवाय के द्वारा पालित होता है। समवाय को आत्मबोध की ट्रेनिंग कहा जा सकता है। इस प्रकार समवाय की धार्मिकता स्पष्ट है।

के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य यह विवेक कर सके कि कहां तो वास्तव में उसका शुद्ध अंतःकरण बोल रहा है और कहां उसके काम–क्रोधादि विकार शुद्ध अंतःकरण की आवाज़ को धोखा दे रहे हैं। समवाय का सिद्धान्त मनुष्य को आत्मनिरीक्षण सिखाता है। समवाय ईशोपनिषद् के आदेश के अनुसार 'कृतं स्मर, कृतं स्मर' का सिद्धान्त है। जो कुछ तुमने किया उसका स्मरण करो, उसे समझो, ताकि तुम अपने को ठीक तरह समझ सको और विकारों से धोखा न खाओ। यह उपदेश समवाय के द्वारा पालित होता है। समवाय को आत्मबोध की ट्रेनिंग कहा जा सकता है। इस प्रकार समवाय की धार्मिकता स्पष्ट है।

अंतःकरण की आज्ञा को तो बहुत से लोग प्रायः देख लेते हैं, पर उसका पालन करने की शक्ति नहीं रहती। समाज में जो अधर्म व्याप्त है, उसमें अधिकांश कारण यही होता है। अब मनुष्य वह शक्ति कैसे प्राप्त करे कि वह अंतःकरण की आवाज़ के अनुसार आचरण करने की शक्ति और साहस प्राप्त कर सके। इसका उत्तर हमें सर्वोदय और बुनियादी तालीम के इस सिद्धान्त में मिलता है कि विज्ञान का उपयोग विकेन्द्रित औद्योगीकरण के लिए किया जाय और व्यक्ति को जीवन की बुनियादी बातों में यथासंभव स्वावलंबन और सादगी की शिक्षा दी जाय।

स्वावलंबन में आर्थिकता का दर्शन करना स्वावलंबन को और सादगी को न समझना है। स्वावलंबन और सादगी ये दोनों धार्मिक और आध्यात्मिक साधनाएं हैं, इस बात को जितना ठीक तरह समझा जाय, उतना ही देश की नैतिक स्थिति को सुधारा जा सकता है। नौकरी की प्रथा देश के नैतिक पतन का एक बहुत बड़ा कारण है, क्योंकि जो लोग आजकल नौकरी करते हैं, उनमें से अधिकतर ऐसे होते हैं, जिनको यदि हर पहली तारीख़ को वेतन प्राप्त न हो, तो जिनके घर का गुज़र कठिन हो जाता है और जो कोई ऐसा काम नहीं जानते कि यदि नौकरी न रहे, तो जी सकें। मुहताज़गी का अभिशाप आमतौर पर शिक्षित वर्ग में पाया जाता है। विवेकानन्द ने एक जगह बिलकुल ठीक ही कहा है कि ''पराश्रयी व्यक्ति सत्यरूपी परमेश्वर का उपासक नहीं बन सकता'', तो जो मुहताज़ हैं, जिनको नौकरी के सिवा कुछ भी नहीं आता और जो अपना अधिकांश काम अपने हाथों से नहीं कर सकते, उनसे क्या यह आशा की जा सकती है कि वे अपने अंतःकरण की आवाज़ के अनुसार काम कर सकेंगे या अपने अंतःकरण के अनुसार अपनी राय साहस के साथ प्रकट कर सकेंगे? आर्थिक मुहताज़गी के कारण आज बड़े–बड़े प्रोफ़ेसर लोग, जिनका काम यह है कि स्वतंत्र बुद्धि से सोचें और जनता का वैचारिक नेतृत्व करें, दिमाग़ी ग़ुलामी के शिकार हो रहे हैं और इस वजह से या तो सोचते ही बंधन में हैं या यदि कुछ स्वतंत्र चिन्तन करते भी हैं, तो उसे गुप्त रखने को मजबूर होते है। कहते हैं कि मौर्य साम्राज्य का प्रसिद्ध मंत्री चाणक्य किसी महल में नहीं रहता था और न वह किसी नौकर पर आश्रित था, वह एक साधारण झोंपड़ी में रहता था और अपनी रोटी स्वयं सेंकता था। यह उसका आर्थिक लक्षण नहीं था, यह उसका वैचारिक, नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक लक्षण था। अधर्म का प्रवेश आर्थिक दासता के राजद्वार से होता है। जब गांधीजी से पूछा गया कि आपने बुनियादी शिक्षा में धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था तो कुछ की ही नहीं है, तो उन्होंने यह जवाब दिया कि '' मुझसे पूछा गया है कि मैं धार्मिक शिक्षा पर कोई ज़ोर क्यों नहीं देता? वजह यह है कि मैं उन्हें स्वावलंबन का धर्म तो सिखा ही रहा हूं, जो कि मेरे ख़याल में सब धर्मों का अमली रूप है।'' गांधीजी का यह कथन यों ही दरगुज़र नहीं कर दिया जाना चाहिए। यह कथन एक ऐसे व्यक्ति के जीवनभर के

अनुभव का निचोड़ है, जिससे बढ़कर अपने धर्म पर अडिग रहनेवाला उसके युग में कोई दूसरा ढूंढ़ना अत्यंत कठिन है। गांधीजी ने स्वावलंबन को बुनियादी शिक्षा की अम्लपरीक्षा भी इसीलिए कहा कि स्वावलंबन में उनको धर्म की शिक्षा दिखाई देती थी और वे यह चाहते थे कि कि बुनियादी शिक्षा धर्म की शिक्षा बने, क्योंकि आज विज्ञान की जो दशा है, उसके संदर्भ में एक नवीन युग–धर्म की शिक्षा अनिवार्य हो गयी है। यह बात कुछ गांधीजी ही नहीं मानते थे, जिन पश्चिमी देशों ने आधुनिक विज्ञान के चमत्कारों को हमसे बढ़कर अनुभव किया है और जिनको दो महायुद्धों की आग में से गुज़रना पड़ा है, अब तो वे भी 'त्राहि–त्राहि' कर उठे हैं और यह चाहते हैं कि शिक्षा में धर्म की पुनः स्थापना की जाय। 'मनुष्य का व्यक्तित्व जितना आधिभौतिक है, उतना ही नैतिक और आध्यात्मिक भी है, अतः यदि शिक्षा का ध्येय मनुष्य का समग्र विकास है, तो उसकी नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा की उपेक्षा कैसे की जा सकती है?

प्राचीन युग में जबकि विज्ञान की आज–सी उन्नति नहीं हुई थी, लोग अपने–अपने छोटे समुदाय में स्वाधीन और स्वावलंबी थे और व्यक्ति भी बहुत हद तक अपना काम स्वयं कर लेता था और इस प्रकार स्वावलंबन सहज ही सिद्ध था। पर आज के विज्ञान के संदर्भ में, जबकि केन्द्रीकरण अत्यधिक हो गया है और जिसकी समस्याएं रात–दिन सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती जा रही हैं, धर्म को नया व्यूह रचना होगा और वह नया व्यूह यही है कि विज्ञान को विकेन्द्रीकरण के रास्ते पर मोड़ा जाय और व्यक्ति तथा छोटे समुदाय को स्वावलंबी बनाने में विज्ञान की सहायता ली जाय। संपन्नता की उपासना होनी चाहिए और मुफ़लिसी को आदर्श नहीं बनाया जाना चाहिए, यह सही है और भीमकाय उद्योगीकरण से मुमकिन है कि संपन्नता बढ़ती भी हो। पर संपन्नता का फल यह नहीं होना चाहिए कि मनुष्य संपन्नता का दास हो जाय और उस दासता के कारण अपने चिंतन को भी ग़ुलामी से जकड़ दे। उपनिषदों की रचना ऐसे ऋषियों द्वारा की गयी, जिनकी आवश्यकताएं सीमित थीं या ऐसे राजाओं द्वारा की गयी, जो संपन्न होते हुए भी संपन्नता के दास नहीं थे। तो, स्वावलंबन और सादगी ये दो पाये हैं, जिन पर धार्मिकता टिकी हुई हैं। आज हमारे समाज में भ्रष्टता के विरुद्ध पग–पग पर गोरिल्ला–युद्ध लड़े जाने की आवश्यकता है। जो आज़ादी भारत को आज उपलब्ध है, वह केवल ऊपरी आज़ादी है। वास्तविक आज़ादी और वास्तविक सुख–शांति अभी दूर है और उसे लाने के लिए नेताओं की आवश्यकता उतनी नहीं है, जितनी कि ऐसे जनसाधारण की, जो भ्रष्टता और अन्याय से इस देश की चप्पा–चप्पा भूमि पर डटकर लोहा ले सकें। ऐसे जनसाधारण कहां और कैसे मिलेंगे? इसका जवाब विज्ञान और धर्म के, भौतिकता और अध्यात्म के उस संगम और समन्वय में ही मिलेगा, जो युगपुरुष गांधी द्वारा बुनियादी शिक्षा में किया गया है और जिसे समझकर सही निष्ठा से बुनियादी शिक्षा को चलाने की आवश्यकता है।

स्वावलंबन और सादगी ये दो पाये हैं, जिन पर धार्मिकता टिकी हुई हैं। आज हमारे समाज में भ्रष्टता के विरुद्ध पग–पग पर गोरिल्ला–युद्ध लड़े जाने की आवश्यकता है। जो आज़ादी भारत को आज उपलब्ध है, वह केवल ऊपरी आज़ादी है।

साभार– बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे? पुस्तक से।

एक यात्रा–नई तालीम के साथ

★ ज्योतिभाई देसाई

ज्योतिभाई देसाई शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गांधीपीठ, वेड़छी ज़िला सूरत, गुजरात के संस्थापक हैं। वे एक लेखक और गांधी विचारधारा के सफल शिक्षक भी रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय स्थापना दिवस 19 दिसम्बर के अवसर पर 1998 में उनके द्वारा दिए गए उद्‌बोधन के कुछ अंश प्रस्तुत हैं।

★ गांधी विद्यापीठ, नहर कांटे, वेड़छी, सूरत।

मुझे गिजुभाई, ताराबेन मोडक, नानाभाई तथा मूलशंकरभाई एवं जुगतराम दवे जैसे शिक्षा क्षेत्र के महारथियों के साथ रहने का सौभाग्य मिला। ये सभी गुजरात में नई शिक्षा तथा नई तालीम के प्रवर्तक थे। गिजुभाई के अलावा इन सभी के साथ मुझे पर्याप्त अवसर मिला। गिजुभाई के प्रयासों के बारे में अंतरंग जानकारी मुझे एक दंपती के माध्यम से मिली जो उनके सर्वश्रेष्ठ अनुयायी थे। गिजुभाई के पुत्र के साथ काम करने पर भी मुझे उनके कार्यों तथा प्रयासों की जानकारी मिली। मैं अपने सभी मार्गदर्शकों का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे एक उद्देश्यपूर्ण जीवन प्रदान किया। गिजुभाई से मुझे अच्छा अध्यापक बनने का एक बहुत ही आसान फार्मूला मिला। उनका मंत्र था, ''बच्चों को धमकाओ मत और न ही दण्ड दो।'' इस ताबीज का उपयोग करते हुए मुझे गांव के एक बच्चे भागवत ने क़ायल कर दिया जो अपने दिल की आवाज़ पर उठ खड़ा करूंगा।''

स्कूल का प्रधानाध्यापक बहुत परेशान था। उसने कहा, ''ये जंगली बच्चे हैं और इसलिए आपके शहरी तरीक़े यहां कामयाब नहीं होने देंगे। हमारे सामने और उनके सामने इस प्रकार का बयान देना आपकी मूर्खता है। आप इससे तकलीफ़ों के अलावा और कुछ उत्पन्न नहीं करेंगे।'' एक सप्ताह भी पूरा नहीं हुआ होगा कि उन लड़कों में से एक (भागवत) ने कुछ ऐसा किया कि मैं गिर गया और मेरे दाएं हाथ की हड्डी टूट गई। मुझे चिकित्सा के लिए 52 मील दूर अहमदाबाद जाना पड़ा और मेरे हाथ में पट्टा बंध गया।

इसके उपरान्त ट्रेन से घर लौटने की यात्रा के अवसर पर मैं अपने गंतव्य से काफ़ी पहले उस स्टेशन पर उतर गया। जहां वह इस शरारत के पश्चात् भाग गया था। उसके घर पहुंचकर मैंने उससे कहा, ''अब

गिजुभाई से मुझे अच्छा अध्यापक बनने का एक बहुत ही आसान फार्मूला मिला। उनका मंत्र था, ''बच्चों को धमकाओ मत और न ही दण्ड दो।''

हुआ और शेष जीवन के लिए मुझे एक सीख दे गया। मैंने बम्बई (अब मुम्बई) छोड़ दिया था। जहां मेरा जन्म हुआ और जहां मैं 24 वर्ष की आयु तक रहा और वहां से मैं गुजरात में अहमदाबाद के एक गांव में आ गया। गांव के स्कूल की पांचवीं कक्षा के छात्र मुझे अपना अध्यापक मानने लगे क्योंकि वहां कोई अध्यापक नहीं था। मैं ख़ुशी से फूला नहीं समाया क्योंकि ''वे मुझे चाहते थे।'' पहले ही प्रातःकालीन सभा में मैंने यह घोषणा की, ''मेरा मानना है कि एक बच्चे को सज़ा देना उसे सीखने में सहायता देने का तरीक़ा नहीं है। इसलिए मैं आप सबको यह बताना चाहता हूं कि आप चाहे जो कुछ करें, आपको दण्ड देने का विचार मैं कभी नहीं

आ, हम साथ–साथ वापस चलेंगे और सच्चे मित्र बनेंगे।'' जो कुछ हुआ था उसके पिता ने सुन लिया था। अतः उन्हें आश्चर्य हुआ कि मैं उनके बेटे को अपने साथ ले जाने के लिए आया हूं। दस वर्ष बाद, मैं उसी मार्ग से यात्रा कर रहा था। यात्रा के दौरान भागवत के पिता ने मुझे देखा। उन्होंने कहा, ''ओह, ज्योतिभाई, आप हमारे यहां आये बिना कैसे जा सकते हैं।'' उस परिवार के साथ एक दिन गुज़ारने की दृष्टि से मैंने अपना कार्यक्रम बदल दिया। पिता बड़े उत्साहित थे और पूरे दिन सिर्फ़ अपने बेटे भागवत के बारे में ही बातें करते रहे। उन्होंने बार–बार कहा कि, ''आपके बेटे ने काफ़ी कुछ हासिल किया है। मैं तो सोचता था कि वह कुछ नहीं सीखेगा और अपना

जीवन बर्बाद ही करेगा। अतः मैंने उसको आश्रम स्कूल में भेज दिया और अब वह एक ज़िम्मेदार पुलिस अधिकारी है।''

दस वर्ष और गुज़र गये और मैं राज्य के शिक्षा महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों की एक बैठक में भाग ले रहा था। सम्मानित शिक्षा महाविद्यालयों के प्राचार्यों में से एक ने पूछा, ''क्या आपने यहां अहमदाबाद में पुलिस अधिकारी डोडिया की हत्या के बारे में सुना है।'' मैंने आश्चर्य से पूछा, ''यह डोडिया कौन है''? ''ओह, ज्योतिभाई, आपका भागवत डोडिया। वह बहुत ही ज़िम्मेदार और निष्ठावान पुलिस अधिकारी था। वह अपराधों पर अंकुश लगाने में कामयाब रहा और अवैध शराब का धन्धा करनेवालों के लिए तो वह आतंक जैसा था। दो वर्ष पूर्व जब से वह यहां आया था हमारा सारा इलाक़ा सुरक्षित हो गया। वह अक्सर आपके बारे में बात किया करता था। और यह दावा किया करता था कि आप उसके गुरु हैं। उसे राजनीतिज्ञों की मिलीभगत से अवैध शराब का धन्धा करनेवालों ने मार दिया। वे सब उसे अपने रास्ते से हटाने के लिए एक हो गये थे।

मैं शीघ्र ही उसके पिता और उसके परिवार के पास पहुंचा। ''स्वागत है ज्योतिभाई'', उसके पिता ने अश्रुपूरित नेत्रों से आश्चर्यचकित होकर कहा, ''मैं एक प्रसन्न व्यक्ति हूं। आपके बेटे ने हमारे पूरे ख़ानदान को गौरवान्वित किया है। हमारे गांव में केवल उसकी ईमानदारी की ही चर्चा है। लोग इसके अलावा कुछ और बात करते ही नहीं कि उसने पुलिस दल को कितना गौरवान्वित किया है। आपको देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है, जिसने कि एक ऐसे साहसी और ईमानदार व्यक्ति का निर्माण किया।'' मेरा तो केवल हाथ ही टूटा था किन्तु भागवत ने तो अपना जीवन ही दे दिया।

ताराबेन मोडक आजीवन गिजुभाई की साथी रहीं। जब मैं पांच वर्षों से भी अधिक समय के लिए समुद्र किनारे स्थित एक गांव बोरड़ी, ज़िला ठाणे, महाराष्ट्र में काम करता था, उस दौरान ताराबेन ने सकारात्मक दिशा में बढ़ने में मेरी मदद की। हर साल हम वार्षिक दिवस मनाते थे जिसमें आस–पास के गांवों के लोगों को केन्द्र का काम समझने के लिए आमन्त्रित किया जाता था। इसके लिए हम एक प्रदर्शनी लगाते और एक समारोह आयोजित करते थे।

ऐसे ही एक अवसर पर मैंने शंखों तथा समुद्र की सीपियों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया। इस कार्य में हमारे चार प्रशिक्षार्थी अध्यापक श्यामा, ऊषा, जेठा लाल तथा जोशभाई ने मेरा सहयोग किया। इसी तैयारी में हम सारी रात लगे रहे। कभी चीज़ों को ऐसे रखते और कभी फिर से उन्हें व्यवस्थित करते और अन्त में हम अपनी कोशिश से बेहद ख़ुश और संतुष्ट थे। अगले दिन जिसने भी यह प्रदर्शन देखा वह प्रदर्शित वस्तुओं के सौंदर्य से अवाक् रह गया। ताराबेन भी इस प्रदर्शनी को देखने आईं। उन्होंने प्रदर्शनी में घूमते हुए सभी कोणों से इसका अवलोकन किया। ''अविश्वसनीय रूप से बहुत शानदार'', उन्होंने कहा और चली गईं। लेकिन वे दूसरी बार इसे फिर से देखने आईं। उनकी आयु 84 वर्ष थी, इसलिए 200 फीट दूर अपने घर से उनका यहां आना आसान नहीं था। लेकिन फिर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। मेरे बहुत आग्रह पर उन्होंने कहा, – ''इस कलात्मक कार्य ने मुझे निःशब्द कर दिया है और फिर भी मैं .... मैं जानती हूं कि यदि मैं अपनी ओर से कुछ कहूंगी तो आप इसे आगे बढ़ाएंगे और पूरा करेंगे, लेकिन मैं अपने उन चार विद्यार्थियों के बारे में सोच रही हूं जो इसी प्रकार की कला के रचनाकर्मी हैं।'' मैंने उनसे यह बताने का आग्रह किया कि इसमें उनकी क्या दुविधा है। उन्होंने बहुत क्षमायाचना करते हुए कहा,

''ज्योतिभाई यह कार्य तो पूर्णतः सही है किन्तु जो स्थान इसने घेरा है, वह प्रवेश द्वार से प्रवेश में अवरोध उत्पन्न करता है, और जब उनके अभिभावकगण तथा ग्रामीण लोग प्रदर्शनी देखने आयेंगे तो वे वहीं से प्रवेश करेंगे? उनका कथन सही था। इसका कोई विकल्प नहीं था कि इस प्रदर्शन को फिर से व्यवस्थित किया जाये। लेकिन वह सब करना हमारे लिए कठिन कार्य था क्योंकि यह एक ऐसा मामला था जो हमारे अहं को आहत करता था। उन्होंने कहा कि ''मैं बहुत असंयत हूं। समस्या पर कैसे कार्य किया जायेगा, यह विद्यार्थियों को ही तय करना है। मन खुला रखो और उन साथियों पर अपने विचार या रास्ता मत थोपो।'' जब यह बात मेरे उन चारों मित्रों तक पहुंची तो वे बड़े परेशान हुए। उनकी ओर से कठोर सुझाव की है। हमें भी इस बात का संतोष है कि हमने कुछ असामान्य सृजित किया है। शायद यह हमारे अहं का मामला है जो आहत हुआ है। क्या हम इसे फिर से नहीं कर सकते?'' और तब जेठाभाई ने प्रत्युत्तर दिया, ''हम ऐसे दस बना सकते हैं।'' श्यामा ने उनका साथ दिया और शीघ्र ही सब लोग शंखों और सीपियों को उठाने लगे। इस प्रकार यह पैटर्न मंच के सम्मुख ही लगाया गया जहां बच्चे कार्यक्रम प्रस्तुत करनेवाले थे। यह उतना अच्छा तो नहीं बन पाया जितना पहले बना था किन्तु हमें ग़लती सुधारने की सन्तुष्टि मिली।

ताराबेन ने अवसर की संवेदनशीलता को महसूस करते हुए उन चारों साथियों को अपने–अपने आत्माभिमान से ऊपर उठकर कार्य करने के लिए

''मैं बहुत असंयत हूं। समस्या पर कैसे कार्य किया जायेगा, यह विद्यार्थियों को ही तय करना है। मन खुला रखो और उन साथियों पर अपने विचार या रास्ता मत थोपो।''

उनके पास तो सभी तरह के अधिकार थे, पद और स्थान था किन्तु उनके लिए जो महत्त्वपूर्ण बात थी वह यह थी– अपनी स्थिति का दावा न करने और इसके बजाय शिष्टता और विनम्रता से काम करने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता। यही वह ख़ज़ाना था जो मैंने उनके साथ काम करते हुए इकट्ठा किया था।

आये, ''इसे हम नष्ट ही कर दें, बड़े लोग ही हमेशा जानते हैं कि क्या सर्वश्रेष्ठ है। हमें केवल वही करना है जिससे वे ख़ुश हों, यहां हमारा कोई अधिकार नहीं, ऐसे सृजनशील काम को करने का भी।'' उनकी हताशा का कोई उपचार नहीं था। हम समय सीमा से बंधे थे इसलिए आख़िरकार मैंने कहा, ''इस पर हम विचार करें। यहां तीन बार आकर देखने पर भी वृद्ध ताराबेन ने अपने विचार व्यक्त करने से इनकार कर दिया था। उन्होंने और इस परिसर में सभी ने हमारे काम की बेहद सराहना बधाई दी। अथक प्रयास और कल्पना कौशल से सृजित उस शानदार प्रदर्शन की व्यवस्था को हटाकर आगन्तुकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए पुनः उसे स्थापित करना गुरुतर उपलब्धि थी। यह वह बात है जिसे हम सभी सीखना और आत्मसात् करना चाहेंगे। आप हम सबकी प्रशंसा के पात्र हैं।''

यह एक ऐसा व्यक्तित्व था, जो गिजुभाई का एक साथी, सहयोगी और जिसे बाल शिक्षा के क्षेत्र में गांधी जैसा माना जाता है, वह (ताराबेन) मेरे प्रति क्षमाप्रार्थी था, मैं जो कि उनसे आयु में 40 वर्ष छोटा

था। उनके पास तो सभी तरह के अधिकार थे, पद और स्थान था किन्तु उनके लिए जो महत्त्वपूर्ण बात थी वह यह थी– अपनी स्थिति का दावा न करने और इसके बजाय शिष्टता और विनम्रता से काम करने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता। यही वह ख़ज़ाना था जो मैंने उनके साथ काम करते हुए इकट्ठा किया था।

इसके पश्चात्, मैं भावनगर ज़िले के सणोसरा ग्राम में स्थित लोक भारती में शिक्षा स्नातक महाविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापक के रूप में चला गया। इस महाविद्यालय की स्थापना नानाभाई भट्ट ने की थी। जिस छात्रावास में मैं वार्डन था वहां एक दिन चोरी हुई। मैंने इस स्थिति का सामना करने के लिए शिक्षा का एक प्रयोग तैयार किया। अपने छात्रावास के विद्यार्थियों के साथ मैंने इस पर विचार–विमर्श किया और उनमें से कुछ छात्रों की एक समिति बनाने का निर्णय किया जो कि यह पता लगायेगी कि चोरी के लिए कौन ज़िम्मेदार है। इसके पश्चात् मैं अपने मुख्य वार्डन मूलशंकरभाई के पास यह बताने गया कि इस परिस्थिति में, अपने बच्चों के दल को मैं कैसे साथ ले रहा हूं। मैं उस प्रयोग के बारे में इतना जोशीला हो रहा था कि मैं मूलशंकरभाई के दृष्टिकोण के प्रति उदासीन था। वे चुप रहे, और यह वास्तव में एक चेतावनी और अस्वीकृति का संकेत था। मैं कुछ सुनने के मूड में था ही नहीं। किन्तु वे ही सही साबित हुए। 24 घण्टों में ही मेरे प्रयोग ने ऐसी जटिल स्थिति उत्पन्न कर दी कि मेरा सारा नियंत्रण ही खो गया। छात्र दो गुटों में बंट गए और हाथ में चाकू लेकर एक–दूसरे को ललकारने और धमकाने लगे और फिर मैं मदद के लिए मूलशंकरभाई के पास दौड़ा।

वे न तो उद्विग्न हुए और न ही उन्होंने कहा कि ''मैंने तुम्हें कहा था।'' स्थिति बिगड़ने की ज़िम्मेदारी उन्होंने स्वयं अपने ऊपर ले ली और एक शान्तिपूर्ण समाधान खोजने का दायित्व भी स्वयं ले लिया। सायंकालीन प्रार्थना में, जिसमें कि सारा समुदाय साथ इकट्ठा होता था, उन्होंने कहा ''यहां हमें इस बात में कोई रुचि नहीं है कि अपने साथी के विश्वास को तोड़ते हुए चोरी करने जैसा ग़लत कार्य किसने किया। किन्तु हम यहां इसलिए इकट्ठे हुए हैं कि पूर्ण विश्वास का वातावरण निर्माण करके जियें जिसमें प्रत्येक व्यक्ति किसी भी वस्तु के खो जाने के भय से स्वयं को मुक्त अनुभव कर सके और स्वयं सदैव सुरक्षित महसूस कर सके। असुरक्षा की स्थिति में रहने का यद्यपि कोई आकर्षण नहीं होता। हम सदैव ऐसा प्रयास करेंगे कि जिस व्यक्ति की भी कोई चीज खो जाये तो उसे वह अवश्य ही मिल जाये।''

इसके पश्चात् वरिष्ठ गांधीवादी आदरणीय जुगतराम दवे से मुझे सूरत ज़िले में वेड़छी स्थित शिक्षण महाविद्यालय का नेतृत्व करने का आमंत्रण प्राप्त हुआ। वे गांधीजी की नई तालीम के वेड़छी प्रयोग के सृजनकर्त्ता थे। सभी प्रकार के वन उत्पादों का उपयोग करने तथा वनों की देखभाल करने के लिए जुगतरामजी के मार्गदर्शन से वन–श्रमिकों की 64 सहकारी समितियों के सदस्यों ने अपने बच्चों की शिक्षा के लिए उच्च शिक्षा का एक संस्थान स्थापित करने की मांग की। इस प्रकार गांधी विद्यापीठ की स्थापना हुई। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डा. ज़ाकिर हुसैन ने 1967 में इसका उद्घाटन किया। शिक्षण महाविद्यालय विद्यापीठ का ही एक संस्थान था।

जुगतरामभाई अपने हृदय के अंतिम छोर तक एक लोकतंत्रवादी थे। मेरी अक्सर उनके साथ किसी भी विषय पर असहमति हो जाया करती थी और अन्त में मेरे लिए एक ऐसा चुनौती भरा समय आ गया तो मैं उनके पास गया और उनसे कहा कि, ''मैं सोचता हूं, अब मुझे यहां से चला जाना चाहिए। मैं आपके

साथ बातचीत में सदैव ही तर्क–वितर्क की स्थिति बन जाने से अप्रसन्न हूं।'' और तब उन्होंने इस पर कहा, ''असहमति का सदैव स्वागत है। किन्तु अब हम कैसे अलग हो सकते हैं जबकि हम नई तालीम के उद्देश्य सूत्र में बंध गये हैं। अब कभी भी वेड़छी छोड़कर जाने की मत सोचना। और इस प्रकार अब भी मैं वेड़छी में ही रह रहा हूं, जुगतरामजी की वर्ष 1985 में हुई मृत्यु के इतने सालों बाद भी। जब भी उन्हें लगता कि वे ग़लत हैं, वे तुरन्त मेरे पास दौड़े आते और कहते, ''मैं माफ़ी मांगने आया हूं। हालांकि आपने मेरा ध्यान आकर्षित किया था, मैं फिर भी उसी मत का हूं इसलिए मैं सहमत नहीं हुआ। किन्तु अब मैं यह महसूस करता हूं कि इस मामले के सम्बन्ध में आगे कार्यवाही हेतु आपका विचार ही सही था। आइये, हम उसी दिशा में आगे बढ़ें।'' एक व्यक्ति जो मुझसे 30–35 वर्ष बड़ा था और जो साबरमती आश्रम के समय से ही गांधीजी का साथी था, ने वेड़छी का यह अनोखा आश्रम बनाया था। अपने तरीक़ों में सुधार करने में उसने कभी संकोच नहीं किया। वह प्रत्येक व्यक्ति को और हर उस व्यक्ति को अपना निकट और साथी मानता था, जिसके साथ उसने काम किया था।

अध्यापकों को नई तालीम के लिए प्रशिक्षित करते समय ये वे पाठ थे, जिन्हें मैंने जीने की कोशिश की। मुझे यह स्वीकार करना है कि जुगतभाई की तरह क्षमाप्रार्थना करके आगे बढ़ने का साहस मुझमें अभी भी नहीं है। लेकिन कम–से–कम मैं उस लक्ष्य को जानता हूं जो मुझे प्राप्त करना है। ये महत्त्वपूर्ण लोग और हां वाकई, मेरा प्रिय भागवत, मेरे प्रेरणा स्रोत हैं जिन्होंने मेरे उन प्रयोगों को सम्पन्न करने में मेरी सहायता की।

नई तालीम अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम

वेड़छी में शिक्षक प्रशिक्षण का एक वर्ष का कार्यक्रम वर्ष 1968 में आरम्भ हुआ था। शिक्षण परिसर में जीवन गांधीजी के दर्शन पर आधारित स्वतः सहायता तथा आत्मनिर्भरता के सिद्धान्तों के अनुसार था। छात्रगण भोजन पकाने, बर्तन साफ़ करने, कपड़े धोने और समूचे परिसर की देखरेख का कार्य करते थे जो कि आत्मनिर्भर बनने हेतु उनके सीखने की प्रवृत्तियों का एक अंग था।

इस कार्यक्रम के प्रमुख तत्त्वों में सम्मिलित थे– प्रवृत्तियों में सहभागिता के द्वारा सीखना, स्वयं निर्देशित शिक्षण जिसके बाद सामूहिक कार्य और समूह चर्चा होती थी, छात्र–अध्यापकों द्वारा समस्या का स्वतंत्र विश्लेषण और अनुभव आधारित आत्मप्रेरणा सीखने का अभ्यास करना। विषयों को स्वतंत्र अनुशासन के रूप में नहीं पढ़ाया जाता था अपितु विशेष रूप से डिज़ाइन की गई प्रवृत्तियों में इन्हें गूंथकर अथवा 5–10 दिन की अवधि की परियोजना के माध्यम से पढ़ाया जाता था, जो कि आसपास के क्षेत्र में सम्पन्न अथवा आयोजित की जाती थी जिससे समुदाय के साथ सीधे सम्पर्क स्थापित करने का अवसर मिलता था। अमुक भौगोलिक क्षेत्र में रहनेवाले ग्रामीण समुदाय की मौलिक आवश्यकताओं का आकलन, प्रशिक्षु अध्यापकों द्वारा किया जाता था। इस अध्ययन में पीने योग्य पानी की समस्या, व्यक्तिगत एवं समुदाय का स्वास्थ्य, गांव की सफ़ाई और भूमिहीन श्रमिकों की समस्याओं से लेकर विकास योजनाओं से सम्बन्धित मुद्दे तक सम्मिलित होते थे। प्रशिक्षु अध्यापकों के साथ अन्तःक्रिया अर्थात् पारस्परिक विचार विनियम से समुदाय को लाभ होता था, इससे समस्याओं के समाधान की ओर बढ़ने का मार्ग प्रशस्त होता था। स्थानीय स्कूलों तथा वहां पढ़ानेवाले अध्यापकों की विशेष समस्या की भी पहचान की जाती थी और इनके सम्भावित समाधान खोजने की प्रक्रिया में समुदाय के सदस्यों को जोड़ा जाता था। अक्सर चर्चा के

लिए सम्बन्धित मुद्दों को ही लिया जाता था, जिनमें रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार अथवा कोई भी राष्ट्रीय/मानवकृत संकट अथवा आपात् स्थिति सम्मिलित होती थी। उदाहरण के लिए, वर्ष 1977–78 में 15 दिन की अवधि के लिए ''टैगोर प्रोजेक्ट'' हाथ में लिया गया। शिक्षक दल (फ़ैकल्टी) के प्रत्येक सदस्य को लगभग 10 छात्रों का दल सौंपा गया। चार समूह बनाए गए और एक फ़ैकल्टी सदस्य तथा प्रत्येक समूह का एक चुना हुआ नेता प्रत्येक समूह के साथ लगाया गया। पहले पांच दिन छात्रगण 5–10 के समूहों में मिले और उन्होंने स्थानीय तथा राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन किया। उन्होंने टैगोर की कृतियों से उपजनेवाले शैक्षणिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर भी चर्चा की। इसके साथ ही उन्होंने गांव के स्कूल के छात्रों और ग्रामीण समुदाय के लोगों द्वारा हाथ में ली जानेवाली प्रवृत्तियों का दैनिक कार्यक्रम भी तैयार किया।

तैयारी के इस चरण में, छात्रों को फ़ैकल्टी सदस्यों से मार्गदर्शन मिला और निकटवर्ती गांवों के कुछ लोगों ने छात्रों को कविवर द्वारा रचित कुछ गीत भी सिखाए। पांच दिन की इस तैयारी में एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया गया। इस कार्यक्रम में ग्रामीण स्वास्थ्य दिवस, अभिभावक दिवस, सामुदायिक बैठक, गांव के बच्चों और वयस्कों के लिए खेल–कूद तथा स्वाध्याय आदि सम्मिलित थे। इस कार्यक्रम में छात्रों के उस समूह को जोड़ा गया जो चयन किये गये गांवों में रहते थे। इन दस दिनों में अनेक सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को भी कार्यक्रम में भाग लेने हेतु आमंत्रित किया गया। अन्तिम दिनों में टैगोर के शिक्षा दर्शन पर एक शैक्षणिक प्रदर्शनी आयोजित की गई। प्रशिक्षार्थियों ने टैगोर पर उपलब्ध साहित्य एकत्रित किया और समूह कार्य के माध्यम से चार्ट तथा मॉडल विकसित किए।

इस कार्यक्रम से ग्रामीण स्कूलों की समस्याओं को समझने में सहायता मिली, साथ ही कक्षा–कक्ष में शैक्षणिक मनोविज्ञान कार्य, स्कूल तथा समाज के मध्य सम्बन्ध (सामाजिक शिक्षा) तथा परिवर्तन के माध्यम के रूप में शिक्षा की भूमिका को समझने में भी मदद मिली।

जब संयुक्त राष्ट्र ने 'विकलांग वर्ष' घोषित किया, हमने विशेष शिक्षा की समस्या को अपने हाथ में लिया। हमने बच्चों और विकलांगों की वर्षभर चलनेवाली प्रवृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित किया। इसका थोड़ा प्रभाव छात्रों के उस समूह पर पड़ा जो काम प्राप्त करने हेतु स्कूलों में गए। कश्मीरा ने ऐसा ही कुछ किया जिसकी याद हमारे दिल में अब भी ताजा है। पांच स्थानों पर उसे निराशा मिली जहां वह काम की तलाश में गई थी। छठे स्थान पर बातचीत के बाद उसका चयन कर लिया गया। किन्तु वहां उसने खड़े होकर कहा,'' सर, मुझे वास्तव में काम की बेहद ज़रूरत है, फिर भी मैं महसूस करती हूं कि मुझे शारीरिक रूप से अपंगों की समस्याओं के बारे में जागरूक होना चाहिए। वेड़छी में रहते समय मैंने यही समझा है। मुझे प्रसन्नता होगी यदि आप यह नौकरी उस विकलांग व्यक्ति को दे दें जिसका साक्षत्कार आपने मुझसे पूर्व किया है। अपनी रोटी कमानेवाले के रूप में उसकी आवश्यकताएं मुझसे कहीं अधिक हैं।

यूनेस्को ने अपने प्रकाशन, 'प्रिपेयरिंग टीचर्स फॉर लाइफलौंग लर्निंग' में नई तालीम शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम पर एक विवरण दिया है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि प्रशिक्षार्थी (छात्र) निकटवर्ती बस्तियों में जाते हैं, 4–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों का सर्वेक्षण करते हैं, समुदाय के नेताओं से मिलते हैं और फिर तीन सप्ताह की अवधि के लिए पूर्व प्राइमरी स्कूल समुदाय के नेताओं से मिलते हैं और फिर तीन सप्ताह की अवधि के लिए पूर्व प्राइमरी

स्कूल आरम्भ करने हेतु एक स्थान को पसन्द करते हैं। वे स्थान का चयन करते हैं, उपलब्ध खेल सामग्री की क्षमता के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं और इसकी एक सूची बनाते हैं। वे फ़ैकल्टी के सदस्यों के साथ इस पर चर्चा करते हैं कि बच्चों के साथ चलाई जानेवाली प्रवृत्तियां कैसी हों, पुस्तकालय में सामग्री खोजते हैं और चित्र, खेल सामग्री का किट इत्यादि इकट्ठा करते हैं। इसके पश्चात् ये दल विभिन्न बस्तियों में जाते हैं और बच्चों के साथ काम करते हैं। कहानियां कही जाती हैं, संख्या विचार सिखाये जाते हैं, रेत में गढ्ढे बनाये जाते हैं और इस प्रकार पूर्व–प्राथमिक शाला (बालवाड़ी) तैयार हो जाती है।

पहले ही दिन 10 वर्ग मीटर का एक प्लाट तैयार किया जाता है। प्रशिक्षार्थी और छात्र मिलकर हाथ चालित उपकरणों से ज़मीन की जुताई करते हैं और शीघ्र उगनेवाली वनस्पति उस पर बो देते हैं। दो सप्ताह की इस अवधि में पूर्व–प्राथमिक शाला प्रतिदिन तीन घंटे चलती है। प्रशिक्षार्थी अपनी रिपोर्ट तैयार करते हैं और अगले दिन वे एक समूह में विद्यापीठ के उन अध्यापकों के साथ इस पर चर्चा करते हैं जो परामर्शदाता के रूप में कार्य करते हैं। दो सप्ताह के अन्त में प्रोजेक्ट समाप्त हो जाता है। इसके पश्चात् समुदाय के लोगों की बैठक आयोजित की जाती है। जिसमें अनुभवों पर चर्चा होती है और समुदाय को बच्चों की शिक्षा की आवश्यकता से सार्वजनिक रूप से अवगत कराया जाता है। बाल मनोविज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया जाता है– पुस्तकें पढ़कर नहीं– अपितु खेलते और काम करते बच्चों के अवलोकन द्वारा। लचीलापन और स्वतंत्रता, स्वाध्याय और समूह कार्य, अवलोकन और प्रवृत्तियां इस पद्धति के प्रमुख तत्त्व हैं, जो सिद्धान्त और व्यवहार के क्रियाशील समन्वय को बढ़ावा देते हैं। कुल मिलाकर, अध्यापक प्रशिक्षण का कार्यक्रम निरन्तरता, समझ तथा समग्रता पर ज़ोर देता है और वर्षभर निरन्तरता के आधार पर आयोजित किया जाता है। इसमें स्वतः सीखने और समूह में सीखने तथा प्रवृत्तियों और व्यावहारिक कार्य के माध्यम से सीखने पर ज़ोर दिया जाता है। पाठ्यक्रम रचना प्रोजेक्ट की शृंखलाबद्ध कड़ी जैसी होती है। समय–सारिणी का कोई कठोर आग्रह नहीं होता। काम करने के स्थान का कोई विशेष रूप नहीं होता। प्रशिक्षार्थी एक ऐसी संस्था में कार्य करते हैं, जहां स्थान विशेष, समय अथवा कठोर पाठ्यचर्या का बन्धन नहीं है। समुदाय तथा क्षेत्र में बच्चों द्वारा हाथ में ली जानेवाली परियोजना तथा प्रवृत्तियों की रूपरेखा छात्र स्वयं ही तैयार करते हैं। समुदाय सेवा और समुदाय के साथ सम्पर्क छात्र–अध्यापक का मूल्यांकन स्वयं उसके द्वारा, समुदाय के द्वारा तथा फ़ैकल्टी सदस्य के द्वारा किया जाता है।

शैक्षणिक प्रवास

शैक्षणिक प्रवास वास्तविक जीवन के अनुभवों पर आधारित होते थे। हम यह ज़रूरी समझते थे कि हमारे भावी अध्यापक किसी ख़ास गांव अथवा स्कूल के अध्यापक नहीं हों अपितु सारे देश के बारे में दायित्व भावना रखनेवाले हों। परिणामतः, शैक्षणिक वर्ष के लिए हमारा यह कार्यक्रम था कि विरोधी और विषम स्थितियों का सामना करने हेतु समूह को कार्य–पर–प्रशिक्षण में शामिल किया जाए। अतः राष्ट्रीय समुदाय के समक्ष उपस्थित समस्याओं का समाधान करने हेतु प्रयास करते हुए शैक्षणिक यात्राओं का आयोजन किया गया। चाहे यह आसाम, बंगलादेशी शरणार्थी हों, चम्बल के डाकू हों, बाढ़ अथवा सूखा की स्थिति हो, मानव जनित आपदा जैसे साम्प्रदायिक हिंसा हो अथवा बंगलादेश की स्थापना, हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपनी ओर से थोड़ा–सा योगदान तो करें। कर्त्तव्य की ऐसी

भावना को प्राप्त करने के लिए हम जहां भी सम्भव हो सका वहीं गए।

वर्ष 1972 में वरिष्ठ गांधीवादी समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण के समक्ष 452 डाकुओं ने स्वेच्छा से आत्मसमर्पण किया था। जे.पी. की चिन्ता थी कि एक सामान्य मनुष्य के रूप में उन लोगों को पुनः समाज में लाने हेतु कैसे मदद की जाए। इसलिए 1972–77 की छह वर्ष की अवधि में प्रशिक्षार्थी–अध्यापकों के समूह को तीन सप्ताह के लिए जेल (खुली जेल) में काम करने का अवसर मिला जहां डाकुओं को रखा गया था। हमने आश्रमवासियों के रूप में उनके साथ रहने का प्रयास किया।

डाकुओं में से एक, मूरतसिंह, जो अपने इलाक़े में रौबिन हुड जैसा था, उस पर 200 हत्याओं के आरोप थे। सागर जेल में मूरतसिंह, राजकुमार जैसा जीवन जी रहा था। जेल के विभिन्न जातियों के सभी कैदियों को भोजन हेतु साथ इकट्ठा करने के लिए हमने एक सामूहिक भोजन का आयोजन किया। उसके दल के एक सदस्य ने हमारी एक युवा महिला प्रशिक्षार्थी सत्या से कहा ''दाऊजी (मूरतसिंह को इसी प्रकार संबोधित किया जाता था) चाहते हैं कि आप उन्हें और हम दस लोगों को कल सामूहिक रूप से स्वयं भोजन करायें (अर्थात्, आप स्वयं भोजन परोसें)''। सत्या ने पूछा, ''मैं क्यों''? और उत्तर था, ''हमने मालूम किया कि आप उच्च जाति की ब्राह्मण हैं, इसीलिए।'' बिना किसी संकोच के उन्होंने (सत्या ने) उत्तर दिया ''दाऊजी, ऐसा नाटक क्यों? सामूहिक भोजन के इस विचार को छोड़ने के लिए मैं अपने साथियों को तैयार कर सकती हूं। यदि मैंने आपका सुझाव मान लिया तो अन्तर्जातीय मिलन की भावना ही समाप्त हो जायेगी।'' और इसके बाद तो मूरतसिंहजी इस अवसर के लिए उठकर तैयार हो गए। उन्होंने कहा, ''ओह, तुम सब मूर्ख लोग। इस युवा महिला से कुछ सीखो। अब हम गांधीवादी बनने की कोशिश कर रहे हैं जैसा कि हमने आदरणीय जे.पी. से वायदा किया है। हम अपने पुराने तौर तरीक़े चालू नहीं रख सकते।'' अगले दिन वे समूह के साथ ही भोजन करने बैठे। लगातार अगले तीन सालों में जब भी हमारा दल उनके साथ रहने के लिए जेल में जाता, तो वे सामूहिक भोज का ही आग्रह करते।

जेल हम सभी के लिए गांधी आश्रम बन गयी और वहां हम साथ मिलकर जीवन बांटने लगे, गाते हुए और स्वयं में परिवर्तन लाने की प्रार्थना करते। इससे हमारे प्रशिक्षुओं को आत्मविश्वास प्राप्त करने और ऐसे समूह के साथ सीधे संप्रेषण की योग्यता हासिल करने में सहायता मिली जिनके लिए कभी हिंसा आजीविका का साधन रही थी। इससे हमारे उस मार्ग से भटके मित्रों को अपना खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त करने में मदद मिली।

जेल हम सभी के लिए गांधी आश्रम बन गयी और वहां हम साथ मिलकर जीवन बांटने लगे, गाते हुए और स्वयं में परिवर्तन लाने की प्रार्थना करते। इससे हमारे प्रशिक्षुओं को आत्मविश्वास प्राप्त करने और ऐसे समूह के साथ सीधे संप्रेषण की योग्यता हासिल करने में सहायता मिली जिनके लिए कभी हिंसा आजीविका का साधन रही थी। इससे हमारे उस मार्ग से भटके मित्रों को अपना खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त करने में मदद मिली।

नयी तालीम की नयी दिशा

★ गोविन्दभाई रावल

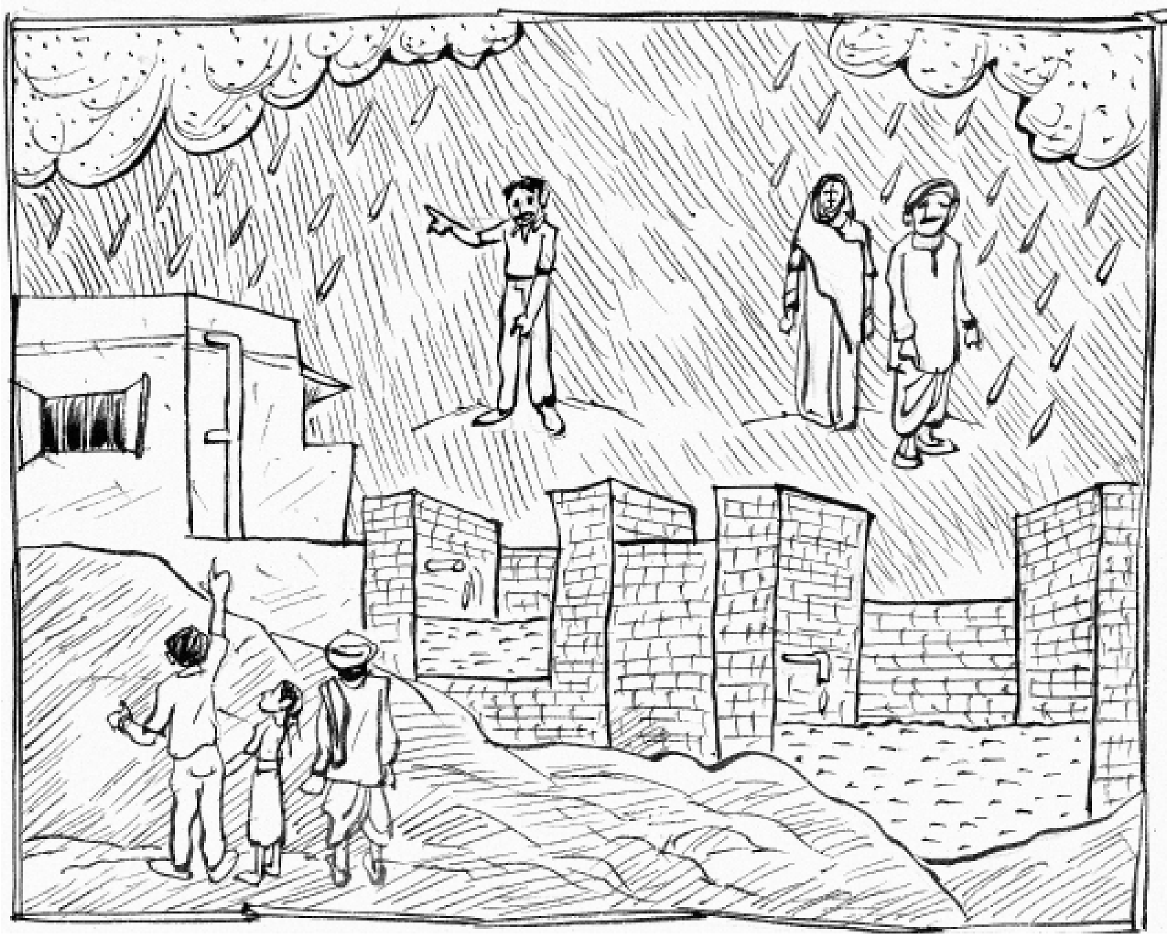

मूलतः नयी तालीम का प्रादुर्भाव कैसे हुआ? कह सकते हैं कि परंपरित तालीम के दुष्परिणामों के अनुभव से। गांधीजी ने अपने अनुभव एवं चिंतन के फलस्वरूप नयी तालीम के विचार को पुरस्कृत किया। परंपरित शिक्षा के महत्त्वपूर्ण दुष्परिणाम निम्नलिखित बता सकते हैं :–

प्रथम त्रुटि यह है कि वह समाज में वर्गभेद यानी उच्च–निम्न की भावना पैदा करती है। नौकरी करनेवाले एवं बुद्धिजीवी उच्च और श्रमजीवी निम्न, उत्पादक एवं धनिक उच्च और ग़रीब निम्न एवं अंग्रेज़ी बोलनेवाले उच्च और मातृभाषा बोलनेवाले निम्न।

★ विश्वमंगलम्, अनेरा, गुजरात

इससे हमारा ग़ुलामी मानस बना। ब्रिटिश शासन की भारतीयों को अंग्रेज़ी भाषा, रहनसहन के ज़रिये 'काले अंग्रेज़' बनाने की योजना थी। उस समय यह योजना तो पुरजोश से चली बल्कि आज स्वराज्य के 62 साल के बाद भी यही मैकाले योजना भारत में चलती है।

महात्मा गांधी ने इसी मैकाले योजना के विकल्प में हमें बुनियादी शिक्षा नयी तालीम योजना प्रदान करके भारतीय सत्त्व एवं संस्कृति को विकसित करने का बढ़िया प्रयास किया। किन्तु अपने देश में स्वराज्य की सरकारों ने नयी तालीम योजना के साथ–साथ गांधीजी को भी उपेक्षित कर दिया है।

फिर भी बापू के पुण्यप्रताप से समग्र भारत में सिर्फ़ गुजरात ने नयी तालीम का प्रशस्य प्रयोग किया। यदि इसका श्रेय किसी को देना हो तो गांधीजी द्वारा स्थापित गूजरात विद्यापीठ को दिया जा सकता है। इसके साथ–साथ ऋषिपुरुष नानाभाई भट्ट और कवि मनीषी जुगतरामचाचा का योगदान भी प्रशस्यतम है। इन तीनों के प्रयोग समग्र गुजरात में पिछड़े गांवों में और आदिवासी प्रदेशों में फैले, जिसमें ग़रीब, वर्ग–दलित एवं आदिवासियों की नयी पीढ़ी तैयार होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में काम करने लगी।

नयी तालीम में प्रकृति, संस्कृति, समूह जीवन और सामाजिकता जैसे बढ़िया अंगों को नज़रअंदाज़ किया गया। सिर्फ़ एकमात्र अंग उद्योग का निर्देश भी ग़लत तरीक़े से हुआ। गांधीजी ने सिर्फ़ उद्योग शिक्षा की ही नहीं बल्कि उद्योग द्वारा शिक्षा की बात की थी।

वर्तमान शिक्षा जगत् प्रत्येक विषय की शुद्ध शिक्षा– 'प्योर सायन्स' सिखाने में मानता है जबकि नयी तालीम प्रत्येक ज्ञान–विज्ञान में 'एप्लाइड सायन्स' कितना है, यह समझाती है, जिससे जीवन में इसका विनियोग हो सके।

नयी तालीम के प्रयोगों से इन वर्गों की अधिकांश बहनें शिक्षित होने लगी। फलतः उत्तम सामाजिक सुधार का काम हुआ, इससे गुजरात में नक्सलवाद का प्रवेश नहीं हुआ इसका श्रेय प्रायः गांधीजी की नयी तालीम को जाता है।

गुजरात में सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से ऐसा सफलतम शिक्षा प्रयोग होने के बावजूद जब कभी शिक्षा पंचों की रचना हुई तब इस प्रकार के प्रयोगों के मुताबिक़ भारतीय शिक्षा की पुनर्रचना करने की सिफ़ारिश न हुई। हां कभी–कभी 'वर्क एक्सपीरीएन्स' तो कभी एसयुपीडब्ल्यु के नाम पर नयी तालीम का कुछ अंश रखा गया। फिर भी ईमानदारी से उसका पूर्णतः अमल नहीं हुआ क्योंकि अध्यापक वर्ग सिर्फ़ पुस्तक प्राप्त शिक्षा के फ़रज़ंद थे। उन लोगों का सबसे बड़ा निरक्षरत्व तो यही था कि उनके मन में गांधीजी की नयी तालीम का मतलब सिर्फ़ उद्योग शिक्षा ही था। लेकिन नयी तालीम में प्रकृति, संस्कृति, समूह जीवन और सामाजिकता जैसे बढ़िया अंगों को नज़रअंदाज़ किया गया। सिर्फ़ एकमात्र अंग उद्योग का निर्देश भी ग़लत तरीक़े से हुआ। गांधीजी ने सिर्फ़ उद्योग शिक्षा की ही नहीं बल्कि उद्योग द्वारा शिक्षा की बात की थी। यह एक नवीनतम विभावना थी फिर भी उसका उचित प्रतिभाव न मिला।

ये सभी अंग जो जीवन के साथ जुड़े हुए हैं तो इन सभी का जीवन के साथ कैसा अनुबंध होता है उसका ख़्याल रखना चाहिए। ऐसी नयी तालीम की अनोखी विशिष्टता अब तक शिक्षा जगत् को समझ में नहीं आयी। वर्तमान शिक्षा जगत् प्रत्येक विषय की शुद्ध शिक्षा– 'प्योर सायन्स' सिखाने में मानता है जबकि नयी तालीम प्रत्येक ज्ञान–विज्ञान में 'एप्लाइड सायन्स' कितना है, यह समझाती है, जिससे जीवन में इसका विनियोग हो सके। फिर भी ज्ञान–विज्ञान की सूक्ष्मता की नयी तालीम कभी भी उपेक्षा नहीं करती यह बात उल्लेखनीय है।

ऐसा एक परिशुद्ध शिक्षाशास्त्र नयी तालीम है।

जिस देश ने गांधीजी को राष्ट्रपिता का सम्मान दिया है, उसी गांधीजी द्वारा प्रदत्त सर्वोत्तम नयी तालीम की उसी देश में भयंकर उपेक्षा हुई। ये कैसी (विधि की) विडम्बना है?

और 60 प्रतिशत लोग कंगाल हैं उसमें 40 प्रतिशत ग़रीबी रेखा के नीचे है। जबकि 20 प्रतिशत लोगों की यह दशा तो कहां की आज़ादी और कहां की लोकशाही?

ऐसी स्थिति में गांधी विचार में श्रद्धावान, सर्वोदय, खादी आदि रचनात्मक कामों और नयी तालीम के कार्यकर्त्ता ग़ुलाम गांवों और उनकी प्रजा को आत्मनिर्भर बनाने के लिए एकजुट होकर कार्य क्यों न करें?

विज्ञान, टेक्नोलोजी, मैनेजमेण्ट और सत्याग्रह इन चार आयामों द्वारा गांव निश्चित रूप से विकसित हो सकते हैं।

गांधीजी का अंतिम दर्शन नयी तालीम ही थी। इस प्रकार पुनः निर्माण का समग्र कार्यक्रम नयी तालीम मूलक होना चाहिए।

एक समय भारत अंग्रेज़ों की राजकीय एवं शैक्षणिक रूप से ग़ुलाम था फिर भी भारत आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से स्वतंत्र था। विनोबाजी के मतानुसार तब देश ग़ुलाम था और गांव स्वतंत्र थे। गांव राजकीय रूप से भी आज़ाद थे क्योंकि ग्राम पंचायतों द्वारा स्थानिक कारोबार और न्याय प्रक्रिया चलती थी।

एक समय भारत अंग्रेज़ों की राजकीय एवं शैक्षणिक रूप से ग़ुलाम था फिर भी भारत आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से स्वतंत्र था। विनोबाजी के मतानुसार तब देश ग़ुलाम था और गांव स्वतंत्र थे। गांव राजकीय रूप से भी आज़ाद थे क्योंकि ग्राम पंचायतों द्वारा स्थानिक कारोबार और न्याय प्रक्रिया चलती थी।

वर्तमान समय में आज़ाद भारत अमरिका की आर्थिक एवं सांस्कृतिक ग़ुलामी में फंसा हुआ है। यह बात सही है कि 40 प्रतिशत लोग मौज शौक़ करते हैं

ग्राम टेक्नोलोजी के क्षेत्र में बहुतेरे संशोधन एवं प्रयोग हुए हैं।

गुजरात में राज्याश्रित नयी तालीम का भविष्य ख़तरे में है। इसको इष्टापत्ति समझकर हमें नयी दिशा में चिंतन आरंभ करना चाहिए। अपने ग्रामोद्योग एवं खादी केन्द्र अभी तो उत्पादक केन्द्र हैं यदि ये केन्द्र चाहें तो बहुत तेज़ी से मानवीय टेक्नोलोजी का प्रशिक्षण केन्द्र हो सकते हैं। डॉ. लोहिया का सूत्र 'छोटी मशीन–सबको काम' को हमें अमली बनाना चाहिए।

नयी तालीम केन्द्रों को भी ग्राम टेकनोलोजी के केन्द्र आरंभ करने चाहिए। जिनको हम 'एप्रोप्रिएट टेकनोलोजी' या मानवीय टेकनोलोजी कह सकते हैं। उसमें तीन माह से लेकर दो साल तक के विविध अभ्यासक्रम सिखाये जा सकते हैं, जिनके द्वारा आम आदमी स्वयं कमाई करनेवाला हो सकता है। इसके लिए निम्नलिखित मानवीय टेकनोलोजी की तालीम दे सकते हैं :–

– सजीव खेती
– गो संवर्धन
– गोबरगैस प्लान्ट– बायोमास–बीज उत्पादन
– वर्मीकम्पोस्ट
– गोमूत्र अर्क
– बागायती खेती
– सब्ज़ियों की खेती
– नर्सरी
– कृषि फ़सलों का प्रोसेसिंग
– खद्दरकाम की विविधि प्रक्रियाएं और तालीम
– जलसंचय–तालाब–चेकडैम आदि
– जल व्यवस्थापन
– ड्रिप इरिगेशन
– बरसाती पानी के स्टोरेज
– सोलर पावर
– कम्प्यूटर– इन्टरनेट
– पवन चक्की
– डोम डिज़ाइन के मकानों का निर्माण

ये तो सिर्फ़ एक झलक है। इसका एक बढ़िया प्रयोग महाराष्ट्र में पूना के नज़दीक एक गांव में हुआ है, और महाराष्ट्र सरकार ने माध्यमिक शिक्षा में उसको समाविष्ट किया है। उसको हमें देखना चाहिए। इन्दिरा गांधी नेशनल ओपन युनिवर्सिटी की 'कम्युनिटी कॉलेज' की बात भी ध्यानाकर्षक है। देश की आबादी का बहुतेरा हिस्सा–वर्कफोर्स अनस्किल्ड है इसलिए बेकार है। उसमें 3 माह से लेकर 2 साल तक की एप्रोप्रिएट टेक्नोलोजी की तालीम देकर स्वावलंबी करने की योजना है वही अपने लिए भी अच्छी है। बाद में तो काम करते करते नये सुझाव तो मिलेंगे ही। लेकिन अपनी गांधी विचार मूलक संस्थाओं को अब सिर्फ़ सरकारी या युनिवर्सिटी मान्य अभ्यासक्रमों के बजाय ऐसे 'ग्रासरूट' तालीमी कोर्सें अपनी–अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्रदेश एवं संसाधनों को ध्यान में रखकर प्रारंभ करनी चाहिए।

लेकिन अपनी गांधी विचार मूलक संस्थाओं को अब सिर्फ़ सरकारी या युनिवर्सिटी मान्य अभ्यासक्रमों के बजाय ऐसे 'ग्रासरूट' तालीमी कोर्सें अपनी अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्रदेश एवं संसाधनों को ध्यान में रखकर प्रारंभ करनी चाहिए।

हम हिम्मतपूर्ण क़दमों द्वारा मानवीय टेक्नोलोजी से ग्रामीण ग़रीबी को नाबूद कर सकते हैं। मेरे मतानुसार यही नयी तालीम की नयी दिशा है।

प्रायः नयी तालीम को यह सतर्कता रखनी चाहिए कि सिर्फ़ उद्योग की टेक्नोलोजी से तालीमार्थी को मात्र कमाई करनेवाला बनाना यह नयी तालीम का लक्ष्य नहीं है, लेकिन उसे एक ज़िम्मेदार नागरिक और मानवतापूर्ण मनुष्य बनाना यही नयी तालीम का लक्ष्य है। नयी तालीम का लक्ष्य समूह जीवन,

समाज सेवा, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों द्वारा ललित कलाओं का विकास तथा योग–आरोग्य और अध्यात्म आदि की शिक्षा प्रदान करने का होगा– इसी को नयी तालीम कहा जायेगा नहीं तो केवल ग्राम टेक्नोलोजी की तालीम से सिर्फ़ व्यवसायी शिक्षा होगी।

नयी तालीम को गहनतम दृष्टि से देखें तो इतनी तालीम अपूर्ण मानी जायेगी जो समयानुसार तालीमार्थी में 'नो सर' कहने की शक्ति विकसित न हो। गांधीजी से क्षमा मांगकर कहना पड़ेगा कि सिर्फ़ स्वावलंबन नयी तालीम का 'एसिड टेस्ट' नहीं है। बल्कि नयी तालीम का 'एसिड टेस्ट' तो समय आने पर 'नो सर' कहने की ताक़त में है। हम आत्ममंथन करेंगे तो हमें पता चलेगा कि गांधीजी की यह 'सत्याग्रही शक्ति' हम गांधी सेवकब गण खो चुके हैं जिससे अपना तेज कम हुआ है।

जिस प्रदेश में नयी तालीम केन्द्र–रचनात्मक कार्य केन्द्र हों, और वहां सरकार या कोर्पोरेट सेक्शन के लोग जल, ज़मीन, जंगल और खनिज तथा अन्य प्रदेशों के स्रोतों को हड़प करना चाहें या प्रदूषण फैलायें तो उनके सामने अहिंसक आंदोलन करने की ज़िम्मेदारी गांधीजनों के केन्द्र की होनी चाहिए।

सिर्फ़ बच्चों को पढ़ाना और थोकबंध खादी ग्रामोद्योग का माल पैदा करना ही हमारा काम नहीं है, ये चीज़ें तो 'बाय प्रोडक्ट' हैं। हमारे सभी कार्यों से लोगों में अन्याय प्रतिकार शक्ति विकसित होती है या नहीं यही गांधीजी के रचनात्मक कार्यों की सही कसौटी है। लोगों की सहायता करनेवाले कामों के लिए असंख्य एन.जी.ओ. हैं ही। गांधीजी की 'नो सर' कसौटी हमें याद रखनी चाहिए।

विश्व आज गांधीजी को इसलिए याद करता है कि उन्होंने जगत् को अन्याय प्रतिकार की अहिंसक खोज 'सत्याग्रह' का शस्त्र दिया। हमारा सद्भाग्य है कि आज भी गुजरात में 94 साल के बुजुर्ग युवा नेता चुनीकाका और वयोवृद्ध अर्थशास्त्री मेहता 'नो सर' काम अकेले कर रहे हैं। ये दोनों हमारी 'दीवादांडी' हैं, उनको वंदन करके मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

शोषण रहित समाज की रचना

★ पवन कुमार गुप्ता

टिहरी गढ़वाल के दूर–दराज़ के गांवों में छोटे–छोटे स्कूल चलाते हुए 21 वर्ष हो गये। बहुत जल्दी यह बात समझ आने लगी कि आम पढ़ाई–लिखाई से अगर कुछ थोड़ा–बहुत फ़ायदा होता भी है तो भी नुक़सान ज़्यादा हो रहा है। यह नुक़सान ज़्यादा गहरा और गम्भीर है। गम्भीर इसलिए भी कि यह ऊपर–ऊपर से दिखाई नहीं पड़ता। 'विकास' से चौंधियाई आंखें जाने–अनजाने कुछ अलग ही तरह के सपने लेने लगती हैं। सपने, जिन्हें इस 'विकास' का ज़्यादा–कम लाभ मिल रहा है वे तो लेते ही हैं, जिन्हें इसकी जूठन भी नहीं मिलती, वे भी लेने लगे हैं। हां माओवादियों से प्रभावित इलाक़ों में जो जन–जातियां रहती हैं, वहां क्या हाल है मैं नहीं

★ 'सिद्ध' हेजलवुड लंढौर कैंट, मसूरी 248 179

जानता। क्या वे भी 'विकास' के सपने लेते हैं? अगर नहीं, तो अच्छा ही है– कुछ उम्मीद बचती है।

पढ़ाई लिखाई का मोटा और गहरा नुक़सान है– जिससे जन–मानस ग्रसित हो रहा है– नक़ल करने को 'विकास' मानना। मौलिक रूप से देखना, मनन करना, समझना ग़ायब हो रहा है, अपने को, परिवार को, समाज को, गांव को 'पिछड़ा' मानना (बिना 'विकास' और 'पिछड़ेपन' को परिभाषित किए) और इस सबके पीछे है– भंयकर हीन–भावना। हमारा भाग्य है कि हमें यह सब बहुत जल्द दिखाई देने लगा। इसमें मदद मिली गांव की साधारण परन्तु समझदार बूढ़ी महिलाओं से और महात्मा गांधी से।

हाल में एक 'सजग' अभिभावक मेरे पास आये। उनको हमारे स्कूलों से, पढ़ाने–लिखाने के तरीक़ों से कोई शिकायत नहीं थी। वे कुल मिलाकर ख़ुश थे। उनका सुझाव एक ही था कि हम अपने स्कूलों के नाम के नीचे 'इंगलिश मीडियम' लिख दें। यहां इस बात को विस्तार देना ज़रूरी नहीं कि वे ऐसा क्यों कह रहे थे या यह कि देश में अंग्रेज़ी के माध्यम से कितनी धोखाधड़ी हो रही है। जो पीड़ित हैं वे ही शोषण के हथियार और हिमायती बन रहे हैं। यह मानसिकता जिसमें ख़ुद शोषित ही शोषण के हथियार बन जायं– 200 वर्षों की अंग्रेज़ी शासन की ग़ुलामी एवं 'विकास' की देन है। अंग्रेज़ों ने हमें ग़ुलाम, हथियार के बल पर नहीं, हमें नक़लची बना कर किया। नक़ल करनेवाला सारी ताक़त नक़ल करके क़ामयाबी हासिल करने में लगाता है चाहे वो अमरिका की हो, यूरोप की हो या चीन या जापान की ही क्यों न हो। यह मौलिकता खो देता है। विद्रोह नहीं कर पाता। विद्रोह करता भी है, तो नक़ल करने के लिए। जैसे 1910 में कलकत्ता के आर्ट स्कूल के विद्यार्थियों ने इस बात पर विद्रोह किया कि उन्हें यूरोपियन कला नहीं सिखाई जा रही है, उन्हें भारतीय काल सिखाई जा रही है। अंग्रेज़ प्राध्यापक हैवल सोचता था कि विद्यार्थियों में भारतीय कला सीखकर ही मौलिकता का विकास होगा। पर हैवल की इस बात पर विद्रोह किया कलकत्ता के भारतीय छात्रों ने।

'आधुनिकता' का विरोध करते रहे महात्मा गांधी। आधुनिकता भ्रम पर टिकी है। नये–नये भ्रमों का निर्माण होते रहता है। ऐसे सिस्टम बन जाते हैं जिसमें आम आदमी चकरघन्नी की तरह 'विकास' के चक्कर में उलझा हुआ घूमता रहता है। आजकल ज्ञान के निर्माण पर ज़ोरों से चर्चा हो रही है। सूचना/जानकारी/हुनर/थ्योरी और ज्ञान में एक मूलभूत फ़र्क़ है। इस बात को नज़रअंदाज़ करके ही इस तरह की ऊलजलूल बात हो सकती है। ज्ञान तो है ही, उसे सिर्फ़ अलग–अलग माध्यमों से / थ्योरियों से/विषयों से समझा जा सकता है। ये तरीक़े, ज्ञान नहीं होते। हर ठोस और द्रव ज़मीन की तरफ़ आकर्षित होता है। इसे स्कूल जाए बग़ैर भी बच्चा समझता है। इस ज्ञान को हर बच्चा समझता है। यह ज्ञान है। न्यूटन ने इसका एक

पढ़ाई लिखाई का मोटा और गहरा नुक़सान है– जिससे जन–मानस ग्रसित हो रहा है– नक़ल करने को 'विकास' मानना। मौलिक रूप से देखना, मनन करना, समझना ग़ायब हो रहा है, अपने को, परिवार को, समाज को, गांव को 'पिछड़ा' मानना (बिना 'विकास' और 'पिछड़ेपन' को परिभाषित किए) और इस सबके पीछे है– भंयकर हीन–भावना।

सिद्धान्त दे दिया। गुरुत्वाकर्षण न्यूटन के पहले भी था ही। जब हम ज्ञान के निर्माण की बातें करते हैं तो हम भ्रम में पड़ जाते हैं। यह भ्रम पिछले 500 वर्षों से तीव्र गति से निर्मित किए गए हैं। आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य को भयंकर अहंकारी बना दिया है। उसे लगने लगा है वह 'कुछ भी' कर सकता है। उसे ऐसा लगने लगा है कि ज्ञान को समझकर (स्व) नियन्त्रित होने की ज़रूरत नहीं वरन् शेष प्रकृति को 'ज्ञान का निर्माण' करने नियन्त्रित करने की ज़रूरत है, अपने भोग के लिए। इस प्रकार की बातें भ्रम फैलाती हैं और झूठा अहंकार देती हैं। उपदेश हम विनम्रता का देते हैं और सारे काम और विचार अंहकार से भरने के करते हैं।

'आधुनिकता' में विरोधाभास और द्वन्द्व निहित है। महात्मा गांधी इस बात को अच्छी तरह समझते और आजीवन इसे ही समझाने का प्रयास भी करते रहे। 'सिस्टम' की ताक़त और उसकी फंसावट से वे वाक़िफ़ रहे तभी तो अंग्रेज़ जज के सामने अपनी दलील देते वक़्त वे हमेशा यह कहते कि 'हां' मैं दोषी हूं। उन्होंने कभी भी अपने को निर्दोष नहीं कहा। फिर थोड़ा रुककर कहते हैं' पर आपके कानून के अनुसार'। इतना कहने भर से वे अपने को अंग्रेज़ी कानून की चहारदीवारी के बाहर कर लेते हैं और फिर अपनी दलील देते हैं खुले में, अपने को सिस्टम के कटघरे से बाहर निकालकर। ये बात हमारे आन्दोलनकारी मित्र कितना समझते हैं— कहना मुश्किल है।

भ्रम से मुक्त होना आवश्यक है। शिक्षा का यही काम है। भ्रम के लिए कटघरे ज़रूरी हैं। ज्ञान उन्मुक्त है उसे बांधा नहीं जा सकता। पर हम कटघरों में फंस गये हैं—सूचना के, विषयों के, 'विकास' के, शब्दों के और ज्ञान के, अर्थ से दूर हो गये हैं। महात्मा गांधी ने शायद ही कभी 'विकास' शब्द का अकेले इस्तेमाल किया। उन्होंने शारीरिक विकास, मानसिक विकास, आध्यात्मिक विकास आदि— इस प्रकार विकास का इस्तेमाल ज़रूर किया परन्तु 'विकास' को अकेले कभी भी इस्तेमाल नहीं किया। यह बात ग़ौर करने लायक है।

पश्चिम का सूर्य अस्त होने की तरफ़ है। यही ताक़त ढलान की तरफ़ है। अस्त होते—होते वक़्त तो लगेगा पर सभ्यताओं की उम्र सैकड़ों/हज़ारों वर्षों की होती है। पश्चिम की ताक़त एक दिन में नहीं आयी। बाल्यावस्था से यौवन के पूरे उभार तक कई सौ वर्ष लगे तो अस्त भी एक दम नहीं होने वाला। पर यह निश्चित है कि उसकी ताक़त अब लगातार घटने ही वाली है, वह कितनी ही कोशिश क्यों न कर ले, जो वह ज़रूर करेगा और कर भी रहा है। बीच—बीच में लग भी सकता है कि उसकी तबियत ठीक हो रही है पर कुल मिलाकर मरणासन्न की ओर ही दिशा है। चीन ताक़तवर दिखता है पर उसने पश्चिम की ही तर्ज़ पर अपनी ताक़त बढ़ाने का फैसला किया है। उसने मौटे तौर पर खेल पश्चिम का ही खेलने का निर्णय लिया है, कोशिश थोड़ा बहुत उस खेल के नियम बदलने की है— बस। अपनी जड़ों से तो वे माओ की सांस्कृतिक क्रान्ति के समय से कटने लगे थे। यह उनको अन्ततः भारी पड़नेवाला है। कोई भी देश अपनी जड़ों से कटकर आगे नहीं बढ़ सकता।

इस परिदृश्य में भारत खेल ही बदलने की क्षमता रखता है। एक ऐसा खेल जो शोषण पर आधारित न होकर सहजता, स्वतन्त्रता और स्वराज्य, जिसमें व्यक्ति आत्मविश्वास, अपनी जड़ों से सम्बन्ध बैठा कर, लीक से हटकर, मौलिकता से सोचने और प्रयोग करने की ज़रूरत है। इसके लिए हिम्मत चाहिए, भीड़ से हटकर, 'विकास' की अवधारणा को चुनौती देकर काम करने की ज़रूरत है। इसमें महात्मा गांधी और 'हिन्द स्वराज्य' पथ प्रदर्शक हो सकते हैं।

बुनियादी शिक्षा में शिक्षक की भूमिका

★ वि.वि. सिंह

शिक्षक ने अपनी कक्षा के बच्चों से हाइक (पिकनिक) पर जाने की बात की। रविवार के दिन हाइक पर पैदल जाने का निर्णय हुआ। अब शिक्षक ने बच्चों से पूछा, ''तुम लोग कितना पैदल चल सकते हो?'' किसी ने 3 किमी. कहा, किसी ने 5 किमी. कहा तो 6–7 किमी. बोलनेवाले बच्चे भी थे। शिक्षक ने कहा, ''चलो एक औसत 5 किमी. निकाल लेते हैं, इतना तो तुम चल ही लोगे। अब तुम इतनी दूरी तक के ऐसे स्थानों के बारे में पता करो, जहां हाइक पर जा सकते हैं। अच्छा बताओ स्थान चयन के लिए किन–किन बातों का ध्यान रखना होगा?'' कुछ उत्तर इस प्रकार के आए–

★ पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

- जगह रमणीक/सुन्दर हो।
- इतने लोगों के बैठने के लिए समतल स्थान हो।
- कुछ छायादार वृक्ष हों।
- पीने के लिए पानी उपलब्ध हो सके।
- स्थान सुरक्षित हो।

अगले दिन बच्चे अपने घरों व आस–पड़ोस के लोगों से स्थानों के बारे में पूछकर आए। बताई गई जगहों पर चर्चा हुई और एक जगह चुनी गई।

बच्चे बड़े उत्साहित नज़र आ रहे थे। यह तय हुआ कि खाना वहीं बनाया जाएगा। क्या बनाया जाए, इस पर कई तरह के विचार आने लगे। सबका खाना एक साथ बनाने के लिए बड़े–बड़े बर्तन चाहिए होंगे इसलिए यह तय हुआ कि खाना छोटे–छोटे समूहों में बनाया जाए और हर समूह/दल यह सोचने के लिए स्वतन्त्र है कि खाना क्या बनाएं। कक्षा में 42 बच्चे थे 6–6 बच्चों के सात दल बनाए गए। हाइक के लिए छात्र कोष से मिलने वाली राशि को प्रति छात्र के हिसाब से बांट दिया गया। उस सीमित राशि से ही हर दल को अपेक्षित सामग्री क्रय करनी थी।

अब शुरू हुआ असली गणित। अपने–अपने दल के लिए मेन्यू बनाया जाने लगा। फिर यह सूची बनी कि क्या–क्या सामान ख़रीदना होगा व कितना? बाज़ार भाव पता किए गए।

एक दल ने पूड़ी व आलू–मटर–टमाटर की सब्ज़ी बनाने का तो दूसरे दल ने दाल–बाटी तो एक दल ने मटर का पुलाव बनाना तय किया और कुछ मिठाई भी ख़रीद लाए। इस प्रक्रिया में 'आटे–दाल का भाव पता लगना' मुहावरा चरितार्थ हुआ।

अपने दल के मेन्यू के अनुसार बर्तनों की सूची बनाई गई। हाइक के लिए एकत्र होकर बच्चों ने अपने–अपने दल में उठाने की सुविधानुसार सामान बांट लिया और यह तय हुआ कि बीच में बदल लेंगे। सातों दलों में बड़ा उत्साह व जोश नज़र आ रहा था।

मंज़िल अर्थात् पिकनिक स्थल पर पहुंचकर आरम्भ हुई, भोजन बनाने की तैयारी। एक दल में कुछ परेशानी सी नज़र आई। पता लगा बीच में विश्राम के लिए जिस स्थान पर रुके थे, वहां से रसद सामग्री का थैला दूसरे बच्चे को आगे ले जाना था। सामान एक तरफ़ रख दिया गया और बाद में उस बच्चे को वह उठाने का ध्यान नहीं रहा अर्थात् वह वहीं छूट गया। अब इतनी दूर वापस जाना तो संभव नहीं था, रास्ता पहाड़ी था। उस दल के छओ बच्चे उदास से नज़र आए, किन्तु शीघ्र ही शिक्षक ने उपाय सुझाया कि इन बच्चों में से एक–एक बच्चा हर दल में जुड़ जाएगा।

शुरू हुआ लकड़ियां बीनना, पत्थरों का चूल्हा बनाना, जलाना और फिर खाना बनाना। सब बच्चे व्यस्त नज़र आ रहे थे। अंत में ख़ुद से पकाए गए भोजन का आनन्द लिया गया।

यह एक ऐसा उदाहरण है जिसमें शिक्षक ने बच्चों में रुचि विकसित करते हुए सबकी भागीदारी सुनिश्चित कर ली। काफ़ी पैदल चलने, स्वयं खाना बनाने से लेकर चीज़ों के भाव–ताव करने और सीमित राशि में अपना बजट बनाने का अभ्यास हुआ। साथ ही ऐसी किसी स्थिति में, जैसे एक दल की भोज्य सामग्री छूट जाने पर समंजन का अनुभव भी प्राप्त हुआ।

बुनियादी शिक्षण योजना में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व केन्द्रीय है। इस शिक्षण योजना में शिक्षक एक सजीव पुस्तक की तरह है, जिसमें शिक्षक के उत्साह व विद्यार्थियों की जिज्ञासा के परिणामस्वरूप नए–नए अध्यायों की वृद्धि होती है।

बुनियादी शिक्षा के शिक्षक की तालीम ऐसी होनी चाहिए जिसमें चंद दस्तकारियों का व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दोनों तरह का ज्ञान उसके पास हो।

शिक्षक को हाथ की तालीम से मिली हुई दिमाग़ी तालीम की योजना बनाने की शिक्षा मिले और इस तरह वह विद्यार्थियों के जीवन, उनकी प्रवृत्तियों और उसकी तालीम में एकता पैदा कर सके।

यह ज़रूरी है कि शिक्षक अपने आस–पास के समाज के जीवन और उनकी प्रवृत्तियों में दिलचस्पी रखते हों तथा स्कूल और समाज के बीच जो गहरा सम्बन्ध है, उसे अच्छी तरह समझते हों। बुनियादी शिक्षा के शिक्षक के अंदर मौलिकता का गुण भी आवश्यक है, जिसमें मौलिकता नहीं होगी वह परिस्थिति के अनुसार बच्चों को शिक्षा नहीं दे सकता।

जहां तक मौलिकता की बात है यदि शिक्षक शिक्षण को रोचक बनाना चाहते हैं तो वे नित नई–नई प्रवृत्तियां सोच सकते हैं। एक उदाहरण देना चाहूंगी। कक्षा 2 में डाक व्यवस्था सम्बन्धी पाठ पाठ्यपुस्तक में था। शिक्षिका ने अपनी कक्षा के बच्चों की संख्या अनुसार पोस्ट कार्ड मंगवा लिए। डाक व्यवस्था की जानकारी देते हुए उन्होंने अन्तर्देशीय पत्र, लिफ़ाफ़ा, पोस्टकार्ड, डाक टिकट आदि दिखाकर, उनके बारे में बताया। एक–एक पोस्टकार्ड सभी बच्चों में बांटकर उन्होंने कहा, 'तुम लोग इसमें एक तरफ़ लम्बे साइड में कोई चित्रकारी करो और दूसरी तरफ़ एक ओर अपने घर पता दूसरे आधे भाग में 'नव वर्ष के लिए मंगल कामनाएं' लिखकर अपना नाम लिख दो। सभी बच्चे चित्र बनाने में व्यस्त हो गए। पता लिखने की बारी आई तो कई बच्चों को अपना डाक पता मालूम नहीं था। शिक्षिका ने कक्षा रजिस्टर से देखकर उन्हें अपना–अपना पता लिखने में मदद की। शुभकामना संदेश के रूप में रंग–बिरंगे पोस्ट कार्ड तैयार हो गए। शिक्षिका ने कहा, "अब हम चलकर इसको लेटर बॉक्स में डालकर आएंगे।"

बुनियादी शिक्षा के शिक्षक की तालीम ऐसी होनी चाहिए जिसमें चंद दस्तकारियों का व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दोनों तरह का ज्ञान उसके पास हो।

शिक्षक को हाथ की तालीम से मिली हुई दिमाग़ी तालीम की योजना बनाने की शिक्षा मिले और इस तरह वह विद्यार्थियों के जीवन, उनकी प्रवृत्तियों और उसकी तालीम में एकता पैदा कर सके।

बच्चे बड़े उत्साहित होकर स्कूल से कुछ दूरी पर स्थित लेटर बॉक्स तक गए और बारी–बारी से अपना पोस्टकार्ड उसमें डाल दिया। कुछ नया करने की अनुभूति उनके चेहरों पर साफ़ झलक रही थी। शिक्षिका ने कहा, 'यहां पर लेटर बॉक्स में डाला हुआ पत्र, लिखे गए पते पर पोस्टमैन पहुंचा देंगे। उस पर डाकघर की मुहर भी लगी होगी। उसमें शहर का नाम व तारीख़ भी लिखी होती है।"

अब तो बच्चे घर पहुंचकर पोस्टमैन का इंतज़ार करने लगे। कुछ के घर अगले दिन तो कुछ के यहां तीसरे दिन पोस्टकार्ड पहुंचने पर बच्चे उत्साहित होकर अपने घरवालों को इस प्रक्रिया के बारे में बता रहे थे। और परस्पर चर्चा कर रहे थे कि किसके घर पोस्टमैन ने पोस्टकार्ड कब पहुंचाया।

एक अन्य प्रयोग इस प्रकार है– हम लोगों ने अपने

स्कूल परिसर में ही एक खाली पड़ी जगह पर खुदाई करवाकर प्रत्येक कक्षा (3,4,5) के लिए स्थान निर्धारित कर दिया। अलग–अलग दिन सप्ताह में दो बार बच्चे वहां जाकर खेतीबाड़ी और बागवानी का अनुभव प्राप्त करते। छोटी–छोटी खुरपियां, फावड़े, पानी डालने के लिए झारे, मिट्टी उठाने के लिए तगाड़ियां उपलब्ध थीं।

क्यारियां बनाकर बच्चे बीज बोते या पौधे रोपते और पानी सींचते। जब गाजर, मूली, टमाटर, गोभी, पालक, बैगन आदि उनकी क्यारियों में उगते तो उनकी ख़ुशी देखते ही बनती थी। कुछ फूलों के पौधे लगाए गए, जिनसे बगीचा सुन्दर दिखता।

बच्चों के पानी पीने के लिए नल लगे थे वहां से जो पानी गिरता उसको भी नाली खोदकर बच्चे अपनी क्यारियों तक ले गए। यह उन्हीं की सूझ–बूझ थी।

एक शिक्षिका ने खेल के कालांश में बच्चों को एक बड़े छायादार वृक्ष के नीचे ले जाकर कहा, ''क्या ही अच्छा हो, अगर हम लोग यहां पर एक चबूतरा बना लें। हम लोग उस पर बैठ भी सकेंगे और अपना सामान यथा बैग, स्वेटर आदि भी रख सकेंगे। स्कूल परिसर में पत्थरों की कमी नहीं थी। बच्चों ने छोटे बड़े पत्थरों का ढेर लगा दिया। अगले दिन मिट्टी एकत्र की गई। अब पत्थरों को जमाकर मिट्टी से भराई करके, ऊपर से गीली मिट्टी से लीपना था। लगभग एक सप्ताह में चबूतरा एक कालांश में काम करके तैयार हो गया। यद्यपि यह अनगढ़ और थोड़ा असमतल तो था पर बच्चों ने बड़े श्रम से उसे बनाया था इसलिए उस पर बैठकर उन्हें आनन्द की अनुभूति होती।

यह सच है कि बच्चों को हाथ से काम करने और किसी चीज़ का निर्माण करने में अतीव आनन्द प्राप्त होता है। इससे अनौपचारिक तरीक़े से उनकी शिक्षा भी होती है। कोई भी दस्तकारी का काम मिट्टी–कुट्टी से चीज़ें बनाना, खेती–बाड़ी, बागवानी करना बच्चों को रुचिकर लगता है। अब यह शिक्षकों पर निर्भर करता है कि वे इनके माध्यम से बच्चों को क्या और कितनी जानकारी दे सकें और कौशलों का विकास कर सकें। शिक्षकों की तालीम ऐसी होनी चाहिए कि वे अपने अंदर विभिन्न विषयों व उद्योग का संयोजन सहज रीति से कर सकें।

जो कारीगर थे उन्होंने अपने औज़ारों में और काम के तरीक़ों में सुधार करने की तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया और जो बुद्धि का काम करते थे, उनका उद्योग से कोई सम्बन्ध न रहा, मौलिकता दोनों में से जाती रही।

गांधीजी का मानना था कि पुराने समय से लेकर आज तक हाथ और बुद्धि का मेल नहीं रहा। जो कारीगर थे उन्होंने अपने औज़ारों में और काम के तरीक़ों में सुधार करने की तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया और जो बुद्धि का काम करते थे, उनका उद्योग से कोई सम्बन्ध न रहा, मौलिकता दोनों में से जाती रही। बुनियादी शिक्षा द्वारा इसी मौलिकता को पुनर्स्थापित कर आवश्यकतानुसार अनुसंधान व शोध की प्रवृत्ति का विकास करना है। उद्योग द्वारा बुद्धि का विकास हो यही बुनियादी शिक्षण योजना का मुख्य बिन्दु है।

शिक्षा के अधिकार के लिए सत्याग्रह

★ भाई वैद्य

शिक्षा के अधिकार के संदर्भ में अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा ने 28 नवम्बर 2010 को पूरे देश में सत्याग्रह शुरू करने का निर्णय किया था। यह सत्याग्रह 6 दिसम्बर 2010 तक जारी रहा। इस सत्याग्रह में बड़ी संख्या में शिक्षकों और अभिभावकों ने भाग लिया। हमको इन तारीख़ों का महत्त्व भी समझना चाहिए। 28 नवम्बर को महात्मा फूले की 120वीं पुण्यतिथि थी और 6 दिसम्बर डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर का महाप्रयाण दिवस था। इस सत्याग्रह की पांच प्रमुख मांगें हैं जिन्हें पैम्फलेट, प्रदर्शनों और पब्लिक बैठकों के आयोजन द्वारा आम समाज जन और केन्द्र व राज्य सरकारों को अवगत कराया गया। ये पांच मांगें इस प्रकार हैं :

1. पूर्व प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर तक की पूरी शिक्षा मुफ़्त, समान और गुणावत्तापूर्ण होनी चाहिए।
2. राज्यों को पूर्व–प्राथमिक शिक्षा की ज़िम्मेदारी लेनी होगी।
3. 12वीं तक की शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाए।
4. उच्च शिक्षा व्यापक और युवाओं को सक्षम और आत्मनिर्भर बनाने में समर्थ होनी चाहिए।
5. ग़ैर अनुदानित संस्थाओं की नीति को पूरी तरह से रद्द कर देना चाहिए।

जहां तक पूर्व–प्राथमिक शिक्षा की बात है, हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि तंत्रिका विज्ञान ने इस तथ्य की पुष्टि कर दी है कि दिमाग़ का विकास 6 साल की उम्र तक पूरा हो जाता है। तो स्वाभाविक है कि इस उम्र की शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण और चिरस्थायी होती है। शायद यही कारण है कि भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संविधान में यह धारा जोड़ी कि संविधान निर्माण के 10 वर्षों के भीतर 14 वर्ष तक की शिक्षा को मुफ़्त और अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि केन्द्र सरकार द्वारा संचालित संसद ने संविधान का संशोधन कर के पूर्व–प्राथमिक शिक्षा जो कि व्यक्तित्व विकास के लिए अत्यावश्यक है, को टाल दिया। बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम, 2009 पास हो चुका है और इत्तफ़ाकन ही सही सरकार ने 6 से 14 साल के बच्चे की ज़िम्मेदारी ले ली है।

मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा की मांग की पहल महात्मा फूले ने 1882 में हंटर आयोग के आने के पहले शुरू की थी। महान् नेताओं जैसे गोपालकृष्ण गोखले और महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता के बहुत पहले इसको दोहराया था। बड़ौदा के सायाजी महाराज और कोल्हापुर के शाहू महाराज ने उनके राज्यों में इस मांग को क्रमशः सन 1906 और सन 1917 में लागू किया था। अधिकांश विकसित देशों ने 19वीं शताब्दी में और कई एशियन अमेरिकन देशों ने 20वीं शताब्दी

में इसको क्रियान्वित किया था। हमें 21वीं शताब्दी के पहले दशक तक इसका इंतज़ार करना पड़ा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि यूनेस्को की ''सबके लिए शिक्षा'' रिपोर्ट 2009 के अनुसार हम विश्व की शैक्षणिक अनुसूची में 102वें स्थान पर हैं। 21वीं शताब्दी ज्ञान का युग है और हम पहले की तरह बच्चे की 14 वर्ष की आयु को प्राथमिक स्तर तक सीमित नहीं कर सकते। यूएनओ सम्मेलन के अनुसार बच्चे की परिभाषा 18 वर्ष की आयु तक मानी जाती है। सम्मेलन स्पष्ट रूप से बताता है कि बाल्यकाल की ऊपरी सीमा 18 वर्ष है। 18 वर्ष के बाद सभी को कानूनी, साम्पत्तिक एवं मतदान के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए 'अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा' ज्ञान की इस शताब्दी में 18 वर्ष तक की मुफ़्त एवं अनिवार्य शिक्षा की मांग करती है और उम्मीद करती है कि भारत में न्यूनतम शैक्षणिक स्तर 12वीं कक्षा यानीकि पूर्ण माध्यमिक शिक्षा होना चाहिए। युवाओं को आत्मनिर्भर, सक्षम और समुदाय समर्पित बनाने के लिए मुफ़्त, समान और गुणात्मक उच्च शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उच्च शिक्षा प्रजातांत्रिक प्रगति का इंजन है।

यह बहुत ही दयनीय स्थिति है कि भारत में केवल 11 प्रतिशत युवा ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं। जबकि अन्य देशों में इसके सदृश आंकड़े इस प्रकार है— कनाडा में 66 प्रतिशत, यूके में 52 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में 80 प्रतिशत और संयुक्त राज्य अमेरिका में 81 प्रतिशत है और पूरे विश्व में इसका औसत 23 प्रतिशत है। भारत में इन 11 प्रतिशत में से अधिकांश छात्र उच्च वर्ग और उच्च जाति से सम्बन्ध रखते हैं। क्योंकि भारत कई शताब्दियों से सामाजिक भेदभाव की बीमारी से ग्रसित है। कुल एक करोड़ छात्रों में से केवल 6 प्रतिशत एससी—एसटी और 5 प्रतिशत मुसलमान छात्र हैं। 89 प्रतिशत युवा आज भी मुख्यतया ग़रीबी और सामाजिक परिस्थिति की वजह से उच्च शिक्षा के दायरे से बाहर है। यही वजह है कि अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा ने यह मांग रखी है। वैश्वीकरण के इस वातावरण में सरकारी—निजी सहभागिता के अन्तर्गत गैर—अनुदानित स्कूलों एवं कॉलेजों को मान्यता देने और प्रोत्साहित करने की नीति को हटाने की मांग बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह कथित वैश्वीकरण वसुधैव—कुटुम्बकम् नहीं है बल्कि निवेश का वैश्वीकरण है जो कि राज्य और उसकी लोक कल्याण की नीतियों की क़ीमत पर पूरी दुनिया को अबाधित गति देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार अपनी शिक्षा नीति के ज़रिए शिक्षा में कम—से—कम खर्चा करके इस क्षेत्र से पीछे हटती जा रही है और वह शिक्षा को कॉर्पोरेटाईज़ करके समाज के समृद्ध वर्ग को सौपती जा रही है जो शिक्षा को ''शिक्षा व्यवसाय'' के रूप में देखता है और इससे बहुत बड़ी मात्रा में लाभ कमाने की अपेक्षा रखता है। भारतीय कार्पोरेट सेक्टर की एक सर्वे रिपोर्ट से निकलकर आया है कि 15 प्रतिशत के लाभ दर के साथ यदि शिक्षा में चार लाख करोड़ रुपयों का निवेश किया जाए, तो शिक्षा को एक ऐसा बाज़ार उत्पाद बनाए जाने के अवसर हैं, जिसको उन छात्रों को बेचा जा सकता है, जिनके माता—पिता की जेबें पर्याप्त रुपयों से भरी हैं।

ग़ैर—अनुदानित संस्थाएं तेज़ गति से बढ़ती जा रही हैं। इसकी वजह से शिक्षा एक मंहगा उत्पाद बनती जा रही है जो कि अधिकांश लोगों को इस व्यवस्था से बाहर धकेल रही है। समानता के मूल्य की क़ीमत पर लोगों को दो हिस्सों में बांटती जा रही है। 1993 में जहां 85 प्रतिशत अनुदानित और 15 प्रतिशत ग़ैर—अनुदानित स्कूल थे, वहीं 2005 में 70

प्रतिशत अनुदानित स्कूल और 30 प्रतिशत ग़ैर–अनुदानित स्कूल थे। भारत में कई माता–पिता महसूस करते हैं कि उनके बच्चों की शिक्षा की ज़िम्मेदारी राज्य की नहीं है, जो कि पहले ही शैक्षणिक ख़र्चों के भारी बोझ से दबा पड़ा है। प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने लोगों को यह आश्वासन दिया था कि कोठारी आयोग 1964 की अनुशंसा के अनुरूप राज्य सकल घरेलू उत्पादन (जीडीपी) के राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च करेगा। सन 2009 में केन्द्र और सभी राज्यों ने 3.1 प्रतिशत की तुच्छ रकम इस पर ख़र्च की। जबकि अधिकांश अन्य राष्ट्रों में यह ख़र्च इससे कहीं ज़्यादा है। शैक्षणिक ख़र्चों के आंकड़े इस प्रकार हैं: स्वीडन 9 प्रतिशत, मलेशिया 8 प्रतिशत, यूएसए 6.7 प्रतिशत और यूके 5.4 प्रतिशत। शिक्षा के प्रति हमारी इस उदासीनता के चलते मानव विकास अनुसूची (एचडीआई) की कम होती संख्या का पता लगाया जा सकता है। सन 2000 में हमारा एचडीआई 124 था, 2005 में 127 था और 2010 में मात्र 134 है। यदि हम सकल घरेलू उत्पाद जो कि अभी लगभग 62 लाख करोड़ है, का 6 प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च करें तो यह राशि लगभग 3.6 लाख करोड़ होगी जो कि सभी के लिए मुफ़्त शिक्षा के लिए पर्याप्त हो सकती है।

समृद्ध अभिभावकों को, राष्ट्र की संस्कृति को खराब करके, अपने बच्चों के लिए पृथक् ग़ैर–अनुदानित संस्थाएं खोलने की अनुमति देने की बजाय, उन पर सरकार पर्याप्त शिक्षण उपकर लगा सकती है। ग़ैर–अनुदानित संस्थाओं की नीति को हटाकर हम पड़ोसी–विद्यालय की अवधारणा को प्रारम्भ कर सकते हैं जो कि कोठारी आयोग की महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशों में से एक थी। इस पांच बिन्दु मांग के संदर्भ में आशा करते हैं कि आप ''सम्पूर्ण शिक्षा मुफ़्त, समान और गुणात्मक'' की मांग में हमारा साथ देंगे। भारतीय शिक्षा का तत्त्व है–अवसर–समानता–गुणवत्ता।

यदि यह प्रश्न किया जाए कि ''क्या सत्याग्रह मोड़ शुरू करने से पहले अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा ने पर्याप्त प्रयास किये थे''? तो यह बिल्कुल सही प्रश्न है। अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा द्वारा की गई गतिविधियों का पूरा ब्यौरा इस प्रकार हैं : माकरी, जिला–धूलिया, महाराष्ट्र में अपनी पांच बिन्दु मांग का प्रस्ताव निरूपित करने के बाद अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा ने 17 फरवरी, 2007 को पूरे राज्य में लगभग 100 आम सभाएं कीं। 10 अप्रैल 2008 को मान गांव, कोल्हापुर जहां पर 1920 में डॉ. अम्बेडकर और शाहूजी महाराज पहली बार मिले थे, से ''शिक्षा का अधिकार अभियान'' शुरू किया गया। पूरे राज्य की यात्रा की गई और लोगों तक अपील पहुंचाई गई। 17 सितम्बर 2008 से 22 अक्टूबर 2008 तक अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा ने ''शिक्षा का अधिकार यात्रा'' आयोजित की, जिसमें 37 दिनों में राज्य के 35 ज़िला मुख्यालयों के प्रत्येक केन्द्र पर रोजाना प्रेस मीटिंग, कार्यकर्त्ताओं की बैठक और आम बैठकें बुलाई गईं और मेरे द्वारा लिखी गई एक पुस्तिका ''सम्पूर्ण शिक्षा : मुफ़्त, समान और गुणात्मक–क्यों और कैसे'' की लगभग 12000 प्रतियां बांटी गईं। बाद में पटना में बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री राम सुन्दर दास द्वारा इसका हिन्दी अनुवाद और कोट्टायम, केरल में समाजवादी जनपरिषद् के जोशी जैकब के द्वारा इसका अंग्रेज़ी अनुवाद निकाला गया। वर्ष 2007 और 2008 के दौरान भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल को देश के विभिन्न स्थानों से हज़ारों पत्र लिखे गए जिसमें उनसे अभिभावकों, शिक्षकों, छात्रों और संस्थाओं की मांगों

पर ध्यान देने की प्रार्थना की गई। अक्टूबर 26, 2009 को नई दिल्ली में ''शिक्षा का अधिकार'' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई, जिसका उद्घाटन डॉ. नरेन्द्र जाधव ने किया और अध्यक्षता मैंने की। डॉ. अनिल सद्गोपाल इस संगोष्ठी के मुख्य अतिथि थे और मावलंकर हॉल में आयोजित इस संगोष्ठी में दस राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इन सभी प्रयासों के बावजूद, जब हमें लगा कि सरकार पत्थर की दीवार की तरह खड़ी है, तो हमें आगे बढ़कर सत्याग्रह शुरू करने का निर्णय करना पड़ा। दुर्भाग्यवश शिक्षा को बाज़ार आधारित बनाने की केन्द्र सरकार की नीति दिन पर दिन मज़बूत होती जा रही है। अगर हम अभी इस पर प्रहार नहीं करेंगे तो इसमें कोई भी परिवर्तन लाने में बहुत देर हो जाएगी।

''शिक्षा का अधिकार सत्याग्रह अभियान'' को पूरे देश में बहुत ही उत्साही प्रोत्साहन और प्रतिक्रिया मिली है। 15 राज्यों की 20 संस्थाओं से बने समाजवादी इस मोर्चे की बैठक में 17 अक्टूबर 2010 को, चंडीगढ़ में एक प्रस्ताव पास किया गया। ''शिक्षा के अधिकार के लिए मंच'' ने अपनी सभी शाखाओं में सत्याग्रह आयोजित करने के निर्देश दे दिए हैं। अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा ने 26 सितम्बर 2010 को पुणे में तालुका सत्याग्रह आयोजन के लिए एक अभियान शुरू किया था। जिसमें 148 व्यवस्थापकों ने भाग लिया था। इस अभियान में भाग लेनेवाले प्रतिभागियों में लगभग 5000 सत्याग्रहियों, जिनमें अधिकांशतः अभिभावक और शिक्षक महाराष्ट्र से थे। महाराष्ट्र के अलावा 15 राज्यों के कम–से–कम 5000 सत्याग्रही इस अभियान में भाग ले रहे हैं। यह देश का पहला अपनी तरह का सत्याग्रह है, जो कि किसी सम्प्रदाय के आर्थिक फ़ायदे के लिए नहीं, बल्कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था के आधारभूत परिवर्तन के लिए है। इसका सरकार पर निश्चित तौर पर सकारात्मक प्रभाव होगा, जिससे हमारे देश के बेहतर भविष्य के लिए, शिक्षा को प्राथमिकता देने की अपेक्षा की जाती है।

भारतीय संविधान में संरक्षित स्वतंत्रता–समानता, बंधुत्व व सामाजिक न्याय की मूल व्यवस्था माननेवालों से अपील करते हैं कि शिक्षा व्यावस्था में सरकार के द्वारा पैदा किए गए विकारों पर ध्यान दें। ग़रीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले 83 करोड़ लोगों की क़ीमत पर, इसे बाज़ार आधारित बना दिया गया है। अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा द्वारा प्रारम्भ किए गए ''शिक्षा के अधिकार सत्याग्रह'' में अभिभावकों, भूतपूर्व एव वर्तमान अध्यापकों एवं विचारकों को लामबंद करके भाग लें। इस संदेश को देश के हर कोने तक पहुंचाएं और अपने बच्चों का भविष्य चमकाने की कोशिश करें, जो कि देश का भविष्य है।

साभार– 'जनता', 21 नवम्बर, 2010 में प्रकाशित आलेख के सम्पादित अंश।
हिन्दी अनुवाद – श्रीमती जया राठौर, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर।

डायरी के पन्ने

बचपन

★ शहनाज़ डी.के.

सितम्बर 2010

सितम्बर 2010 कक्षा में विभिन्न क्षेत्र में कार्य करनेवाले लोग और उनके आपसी सम्बन्ध पर बातचीत चल रही थी। मैंने उनसे पूछा आप किस-किस प्रकार काम करनेवाले लोगों से जाकर पूछताछ कर सकते हैं। बच्चों ने कहा नहीं हमें शर्म आती है और लोग हमें जवाब भी नहीं देते। मैंने कहा हम साथ जाकर पूछेंगे, बच्चे तैयार हो गए। उन्होंने अपनी इच्छा से और किताब की मदद से अलग-अलग लोगों से पूछे जानेवाले सवालों की सूची बनाई। विद्यालय के पास बन रही इमारत में काम कर रहे मज़दूरों से जाकर बच्चों ने बात की और उनके काम के बारे में जाना जिससे उनकी हिम्मत बढ़ी और उन्होंने अपने-अपने गांव में किसानों से बातचीत करके मुख्य फ़सलें और उसमें डाली जाने वाली खाद के बारे में पता लगाया और उन्हें जब विश्वास हो गया कि लोग उन्हें जवाब देते हैं तो वे पास के स्वास्थ्य केन्द्र पर गए और उन्होंने डॉक्टर साहब से अनीमिया रोग तथा उससे बच्चों को होनेवाली परेशानी तथा ऐसे रोगी को क्या खाने की सलाह दी जाती है यह सब बच्चों ने जाना। इस प्रकार बच्चों में दूसरों से बातचीत करने का आत्मविश्वास बढ़ा।

अक्टूबर 2010

अक्टूबर 2010 कक्षा 5 के विद्यार्थी "बीजों" से सम्बन्धित बातचीत कर रहे थे। अंकुरण के बारे में वे बता रहे थे कि बीज में एक जगह पर छेद होता है जहां से अंकुर यानी पूंछ निकलती है। कुछ बच्चों का कहना था कि ऐसा कुछ नहीं होता कहीं से भी बीज की पूंछ निकल सकती है। बच्चों ने प्रयोग करना तय किया अगले दिन सब बीज लाए। उन्हें पानी में रखा, दूसरे दिन रूई में और तीसरे दिन उन्होंने देखा कि अंकुर निकलने का एक निश्चित स्थान है। इसके बाद सभी ने अपने-अपने गिलास पर बीज का नाम व दिनांक लिखकर पर्ची लगाई और बीज बोए। क्योंकि सभी के बीज (राई, चना, मूंग, मक्की आदि) अलग-अलग थे। उन्होंने देखा कि किस बीज से सबसे पहले पौधा बाहर आया। इसके पश्चात् उन्होंने पांच दिन तक उनकी लम्बाई नापी और यह पता लगाया कि किसकी वृद्धि सबसे तेज़ हो रही है। बच्चों ने देखा कि मक्की का पौधा तो उनके स्केल से नापा ही नहीं जा रहा था। साथ ही उन्हें यह भी समझ में आया कि कुछ बीज उगते ही नहीं। और उन्होंने यह भी जाना कि बीज में एक बीजपत्र और दो बीजपत्र होते हैं। ये कह सकते हैं कि एक

★ विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय में शिक्षिका हैं।

बीज के प्रयोग से उन्होंने पूरी 'बीज की कहानी' को समझ लिया।

नवम्बर 2010

नवम्बर 2010 कक्षा 5 में बच्चे पानी में "क्या डूबा, क्या तैरा" प्रयोग कर रहे थे। बच्चे हर चीज़ को अपने अनुमान से जांच कर रहे थे कि वस्तु डूबेगी या तैरेगी। यह जांचते समय उनके मन में यह प्रश्न था कि जहाज़ इतना भारी होता है परन्तु वह डूबता क्यों नहीं।

जब बच्चों ने पानी में कील डाली तो वह डूब गई लेकिन प्लेट तैरती रही। तब मैंने उनसे धीरे-धीरे कंकड़ डालने को कहा बच्चे गिनने लगे 1,2,11,12,16,17 और पूरी प्लेट कंकड़ से भर जाने पर भी नहीं डूबी। यह अनुभव बच्चों को चौकानेवाला था।

दिसम्बर 2010

दिसम्बर 2010 में बच्चों को शैक्षिक भ्रमण पर ले जाना था इस बार अपनी पाठ्यपुस्तक में "सूर्यमणि के जंगल " पाठ को पढ़ते समय बच्चों ने जंगल में जाने की इच्छा ज़ाहिर की थी और मैं भी उन्हें विद्या भवन का "प्रकृति साधना केन्द्र" दिखवाना चाहती थी। कई साथियों का कहना था कि गांव में रहनेवाले विद्यार्थियों के लिए जंगल में जाना कोई नया अनुभव नहीं है। फिर भी बच्चों की इच्छा को ध्यान में रखते हुए हम उन्हें "बीड" ले गए। वहां पहुंचने पर बच्चों ने एक नई फ़िज़ा को महसूस किया वे देख रहे थे कि बिना गाड़ियों और बिना धुएं की भी कोई जगह हो सकती है। वे वहां की शान्ति में चिड़ियों की आवाज़ सुन पा रहे थे और ऊंची-ऊंची घास और झाड़ियों के बीच चलते हुए वे डर रहे थे कि कहीं से कोई जंगली जानवर न आ जाए। सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी कि वे शुद्ध वायु का कारण समझ पा रहे थे और ऐसे कई पेड़-पौधे जिन्हें वो रोज़ाना देखते हैं परन्तु उनके नाम व उपयोग नहीं जानते थे। यानी पढ़ना और देखना अलग-अलग होने पर बेमतलब थे और यही बात बच्चों ने विशेषज्ञों और अध्यापकों के सान्निध्य में कक्षा से बाहर जाकर जानी तो वे भ्रमण उनके लिए यादगार बन गया।

जनवरी 2011

जनवरी 2011 कक्षा 5 विद्यार्थी अपनी अंग्रेज़ी की पुस्तक में (इतपकहमे) पुल के बारे में पढ़ रहे थे। बच्चे बार-बार इसी बात को पूछ रहे थे कि पुल पर इतनी गाड़ियां कैसे चलती हैं? पुल उसका भार कैसे ले पाता है?

मैंने उन्हें याद दिलाया कि क्लास लाईब्रेरी में उन्होंने पढ़ते समय "कबाड़ से जुगाड़" पुस्तक से पोस्टकार्ड को मोड़कर उस पर किताबें खड़ी करनेवाला प्रयोग किया था। इस पर बच्चों ने फिर वह प्रयोग करके देखा तथा खेल-खेल में एक मुश्किल अवधारणा को समझने में उन्हें मदद मिली। बच्चों ने पोस्टकार्ड से बनाए गए खम्भों का आकार बदल-बदलकर अंदाज़ा लगाया कि वे कितना वज़न उठा सकते हैं। और दो पोस्टकार्ड के खम्भों पर उन्होंने 23 किताबों का वज़न जमाया।

खेती–किसानी

(क) खाली–खाली भूमि पर हरा–भरा खेत
घनी–घनी फ़सलें, ये किसान की चेत
कहीं बोया बाजरा, कहीं मक्का, मोठ
ज्वार का खलिहान, भर ली ग्वार की पोट
गेहूं, चना, कुछ जगह, कहीं सरसों की खेती
कहीं बोया जीरा, धनिया, कहीं बोयी मेथी

1. ऊपर की कविता में किन–किन फ़सलों के नाम आए हैं, उनकी सूची बनाओ।
2. पता लगाकर इस सूची में कुछ और फ़सलों के नाम जोड़ो।
3. पता लगाओ कि तुम्हारे गांव में इनमें से कौन–कौन सी फ़सलें उगाई जाती हैं। और ये किन–किन महीनों में बोई जाती हैं, और किन–किन महीनों को काटी जाती हैं?

फ़सल का नाम	बोने का समय	काटने का समय
1.		
2.		
3.		
4.		

(ख) सुखीराम के खेत पर सालभर में तीन बार फ़सल उगाई जाती है। पहली फ़सल की बुआई जेठ–आषाढ़ (मई–जून) और कटाई कार्तिक (सितम्बर–अक्टूबर) माह में की जाती है। इन्हें ''चौमासे'' की फ़सलें भी कहते हैं। अर्थात ये चार माह की अवधि में तैयार होनेवाली फ़सलें हैं। ये वर्षा ऋतु में पैदा की जाती हैं। इन्हें ''ख़रीफ़'' की फ़सलें भी कहते हैं।

अगली फ़सलों की बुआई पूस (नवम्बर–दिसम्बर) और कटाई चैत्र–बैसाख (मार्च–अप्रैल) माह में की जाती है। इनको सर्दी की ऋतु में बोया जाता है। इसलिए इन्हें ''स्याला'' (सर्दी) या ''रबी'' की फ़सलें कहते हैं।

सुखीराम के खेत में तीसरी तरह की फ़सलें जो बोई जाती हैं उन्हें ''उन्याला'' (गर्मी) की फ़सलें कहते हैं।

इन फ़सलों की बुआई चैत्र (मार्च) और कटाई आषाढ़–श्रावण (जुलाई–अगस्त) माह में की जाती है। इन फ़सलों को साल के उन महीनों में बोया जाता है जब तेज़ गर्मी पड़ती है, लू चलती है और हरे चारे की कमी होने लगती है। इन फ़सलों को अधिकतर पशुओं के लिए हरा चारा उपलब्ध करवाने के लिए बोया जाता है जैसे– रजका, बरसीम, ज्वार या बाजरा के लिए इन फसलों की बार–बार कटाई की जाती है।
अपने गांव में उगाई जानेवाली फ़सलों के बारे में पता करके इन प्रश्नों के जवाब ढूंढ़ो–

सबसे अधिक कौन सी फ़सल बोई जाती है?
यह फ़सल सबसे अधिक क्यों बोई जाती है?
यह फ़सल किस–किस काम आती है?
कौन सी फ़सल कम बोई जाती है और क्यों?
किस फ़सल को सिंचाई की सबसे अधिक ज़रूरत पड़ती है?
इसको महीने में कितनी बार पानी देने की ज़रूरत पड़ती है?
क्या यह फ़सल बिना सिंचाई के पैदा हो सकती है?
किस फ़सल को सबसे कम सिंचाई की ज़रूरत पड़ती है?
इसको ज़्यादा–से–ज़्यादा और कम–से–कम कितनी बार सिंचाई की ज़रूरत पड़ती है?
क्या यह फ़सल बिना सिंचाई के भी पैदा की जाती है?
तुम्हारे गांव में सिंचाई के क्या–क्या साधन हैं?
किस फ़सल में सबसे अधिक खाद देने की ज़रूरत पड़ती है?
किस फ़सल में सबसे कम खाद देने की ज़रूरत पड़ती है?
तेज चलनेवाली हवाओं का असर किस फ़सल पर सबसे अधिक पड़ता है और कब?
''पाला पड़ने'' का असर कौन सी फ़सल पर पड़ता है और कब?
फ़सलों के कीड़ों का प्रकोप सबसे अधिक किस मौसम में बढ़ता है?
फ़सलों को कीड़ों के प्रकोप से बचाने के लिए क्या–क्या उपाय किए जाते हैं?

किसान पशुओं का गोबर और घास–फूस एक गड्ढे में इकट्ठा करते हैं। इस गड्ढे में गोबर और घास–फूस पर कभी–कभार कुछ पानी छिड़ककर उसमें नमी रखी जाती है। इसे वर्षभर इसी गड्ढे में दबाए रखते हैं। इसके बाद गाड़ी में भरकर खेत में इस खाद को बिखेरते हैं। ऐसे तैयार की गई देशी खाद फ़सलों के लिए बहुत ही लाभकारी मानी जाती है।
क्या तुम्हारे गांव में भी ऐसा करते हैं?
गड्ढे में डालकर तैयार की गई खाद को अच्छा क्यों माना जाता है?
खेती करनेवाले लोग अक्सर पशु भी क्यों पालते हैं?

साभार– 'कुछ करें' विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर का प्रकाशन।

शक्कर की कहानी

लड्डू, चाय, शरबत, खीर...... ऐसी क्या चीज़ है जो इन सभी में डलती है? यह चीज़ है शक्कर या चीनी। ज़रा सोचो, अगर शक्कर न होती तो हलवाई की दुकान तो ठप्प ही हो जाती। और कौन–सी दुकानें ठप्प हो जातीं?

क्या तुमने कभी सोचा है कि शक्कर कहां से आती है? पेड़ों पर तो यह उगती नहीं। शक्कर मीठी होती है। तो ज़रूर यह किसी मीठी चीज़ से ही बनती होगी।

ये बात तो सही है। शक्कर बनती है गन्ने के रस से। पर इसमें बहुत सी बातें हैं। चलो उन्हें भी देखें। क्या तुम जानते हो कि इस रस को गन्ने से निकालकर शक्कर के दानों में कैसे बदला जाता है?

यह काम कारख़ानों में होता है। शक्कर के कारख़ाने गन्ने की कटाई के समय से चालू होते हैं और तब तक चलते रहते हैं जब तक कारख़ाने में गन्ना आता रहता है। यानी मार्च–अप्रैल तक। गन्ना फरवरी–मार्च के महीने में बोया जाता है। कटाई का काम सितम्बर–अक्टूबर में शुरू होकर फरवरी–मार्च तक चलता है।

एक बार कटने के बाद खेत में लगा गन्ना फिर उगता है और पकता है। इस तरह उसकी दूसरी व तीसरी कटाई तक होती है। सितम्बर से मार्च तक कारख़ानों में गन्ना पहुंचता रहता है और शक्कर बनती रहती है। यानी ये कारख़ाने लगभग छह महीने चलते हैं और बाक़ी समय बंद रहते हैं। हमारे देश में लगभग सभी प्रान्तों में शक्कर बनाने के कारख़ाने हैं। भारत में कुल मिलाकर 400 ऐसे कारख़ाने हैं।

पर कारख़ाना होता क्या है?

कारख़ाना

क्या तुमने किसी कारख़ाने के बारे में सुना है या उसे देखा है? शायद गांव के पास या फिर तुम्हारे शहर में कोई कारख़ाना हो। कारख़ानों में तरह–तरह की चीज़ें बनती हैं। ये ऐसी वस्तुएं होती हैं जिनका हम उपयोग करते हैं। पर हम जिस रूप में उनका उपयोग करते हैं, वे उस रूप में प्रकृति में नहीं मिलतीं। जैसे, कपड़ा सूत के रूप में होता है या चीनी गन्ने में। ऐसी चीज़ों को बड़े पैमाने में बनाने के लिए कारख़ानों में मशीनें होती हैं।

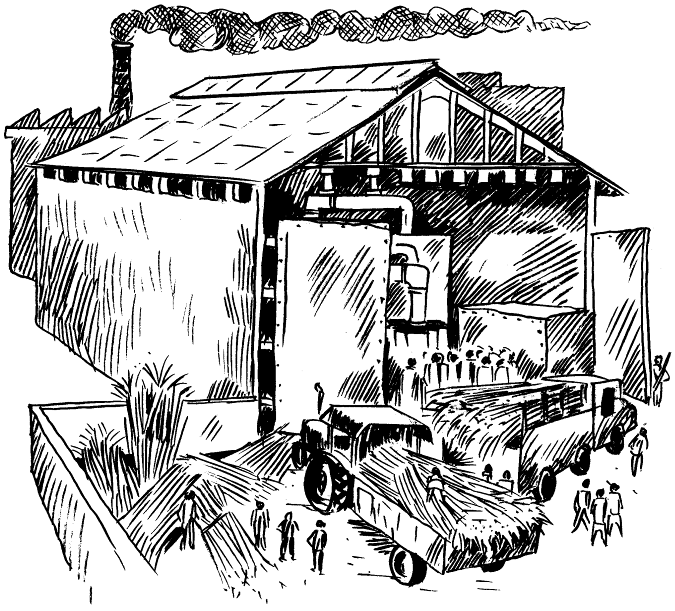

कारख़ानों में एक या दो व्यक्तियों के लिए ही नहीं बल्कि बहुत सारे लोगों के लिए सामान बनता है। इसमें बनानेवाले भी बहुत सारे लोग होते हैं। कपड़े के कारख़ाने में इतना ढेर कपड़ा बनता है कि एक दिन में तुम्हारे गांव के सभी लोगों के लिए कपड़े बन जाएंगे और फिर भी बहुत सारा कपड़ा बच जाएगा। इसका मतलब कारख़ाना एक ऐसी जगह है जहां बहुत बड़े पैमाने पर किसी वस्तु का उत्पादन होता है।

गन्ने के रस से शक्कर कैसे बनती है?

किसान फरवरी–मार्च में गन्ना बोते हैं। सितम्बर में गन्ना पकने लगता है। किसान इसे काट लेते हैं। इस गन्ने का दाम सरकार द्वारा तय किया जाता है और कारख़ाना इसी दाम पर किसान से गन्ना ख़रीदता है। कुछ समय पहले गन्ने का दाम 40 रुपये प्रति क्विंटल था। (आज गन्ना कितने रुपए क्विंटल है, पता करो।)

इस प्रकार कारख़ाने में ढेर–सा गन्ना इकट्ठा हो जाता है। कारख़ाने में गन्नों को मशीनों द्वारा टुकड़ों में काट दिया जाता है। काटने में इनमें से रस निकालना आसान हो जाता है और छिलकों में ज़्यादा रस नहीं बचता।

ये टुकड़े फिर बेलनाकार रोलर में से गुज़रते हैं। ये रोलर घूमते रहते हैं। इनमें से निकलते हुए गन्ने दब जाते हैं और उनका रस निकल आता है। इस रस को इकट्ठा कर लिया जाता है। गन्ने के छिलके अलग पाइप में से चले जाते हैं। फिर भी रस में छोटे छिलके आ ही जाते हैं। इन्हें अलग करने के लिए रस को लोहे से बनी जालियों में से छान लिया जाता है।

इसके बाद इस रस को गाढ़ा किया जाता है। गाढ़ा करने के लिए एक ऐसे तरीक़े का उपयोग किया जाता है जो तुम्हारे लिए नया है। रस को बड़े–बड़े बर्तनों में गर्म रखा जाता है। इन बर्तनों में 2000–4000 बाल्टी तक रस होता है। इन बर्तनों के अंदर के दबाव को कम कर देते हैं। दबाव कम करने से रस में से पानी की भाप ज़्यादा व जल्दी बनती है। ज़्यादा पानी के उड़ने से रस गाढ़ा हो जाता है।

फिर धीरे–धीरे ऐसी स्थिति आ जाती है कि रस में शक्कर के छोटे–छोटे दाने दिखने लगते हैं। ये दाने धीरे–धीरे बड़े हो जाते हैं। इसके बाद उन्हें रस से अलग करके सुखाया जाता है। शक्कर तैयार है।

अब चीनी को बोरियों में भर दिया जाता है। यही बोरे दुकानों पर पहुंचते हैं, जहां से हमें शक्कर मिलती है। अगर तेज़ गर्म करके ही रस को गाढ़ा कर दें तो चीनी के दाने नहीं बनते। इससे गुड़ या बूरा शक्कर बनती है।

चीनी बनाने के लिए चुकंदर का इस्तेमाल भी किया जाता है।

कितना गन्ना, कितनी शक्कर

एक गन्ने में से कितनी शक्कर निकलेगी, यह गन्ने की मिठास पर निर्भर करता है। जितना मीठा गन्ना, उतनी ज़्यादा शक्कर। एक गन्ना लगभग एक किलो का होता है और इसमें से तक़रीबन 100 ग्राम शक्कर, यानी एक छोटी कटोरी शक्कर बनती है। दूसरी तरह से देखें तो दस किलो गन्ने से लगभग एक किलो शक्कर बन जाती है।

आमतौर एक एक औसत (न बहुत, न बहुत छोटे) कारख़ाने में रोज़ 800–1000 बैलगाड़ियों का गन्ने का रस एक दिन में निकाला जाता है। इतना गन्ना इस्तेमाल होता है कि एक दिन में 200 बोरी शक्कर बन जाती है। अगर एक बोरी में 100 किलो शक्कर भरी तो ज़रा सोचो कितनी शक्कर बनती होगी।

एक ऐसी मिल (कारख़ाने) में लगभग 2000 लोग काम करते हैं।

इस कारख़ाने को कितने गन्ने की ज़रूरत होगी? ज़रा सोचो। एक बैलगाड़ी में 15 क्विंटल से ज़्यादा गन्ना आ सकता है। रोज़ इस कारख़ाने में 800–1000 ऐसी ही गन्ने से भरी बैलगाड़ियों का इस्तेमाल करके रस निकालते हैं। सोचो कुल मिलाकर एक दिन में कितना गन्ना ख़र्च होता है।

गन्ने से शक्कर– हर ख़ाने में लिखो कि अगला क़दम क्या होगा। हर खाने के नीचे एक छोटा–सा चित्र भी बनाओ जो ख़ाने में लिखी बात से संबंधित हैं ।

खेत से गन्ना कारख़ाने को →		रस अलग और छिलके अलग
चीनी के दानों को सुखाया जाता है।		

- गन्ने की बुआई कब की जाती है और कटाई कब शुरू होती है?
- क्या किसी और फ़सल की कटाई भी इतने लम्बे समय तक चलती है?
- सोयाबीन की कटाई किस समय होती है? कितने समय चलती है? पकने के बाद कितने दिन में सोयाबीन काटना होता है?
- गेहूं, चावल, मक्का आदि फ़सलों के बारे में मालूम करो।
- कारख़ानों के बारे में चर्चा करो। कितनी तरह के कारख़ाने हाते हैं?

  जैसे– कपड़ा बनाने के लिए भी कारख़ाने होते हैं। कपड़े के कारख़ाने में पहले रूई से सूत बनाया जाता है। इसी कारख़ाने में या किसी दूसरे कारख़ाने में इस सूत को साफ़ करके कपड़ा बुना जाता है। फिर यह कपड़ा बाज़ार में बिकता है।
- क्या तुम कुछ ऐसी चीज़ें सोच सकते हो जो छोटे पैमाने पर घरों में बनती है, पर जिनके लिए कारख़ाने भी हैं?
- क्या तुम्हारे आस–पास कारख़ाने हैं? इनमें क्या–क्या बनता है? कितने लोग काम करते हैं?
- क्या तुम्हारे गांव में कोई गन्ने का रस बेचता है? उस आदमी की मशीन देखकर अंदाज़ा लगा सकते हो कि कारख़ानों में रोलर में से रस कैसे निकलता है।
- शक्कर हम और कौन–कौन सी चीज़ों में डालते हैं?
- गन्ने का छिलका भी उपयोग में आता है। इसका इस्तेमाल ईंधन के रूप में कारख़ाने में किया जाता है। छिलका काग़ज़ बनाने के काम आता है।
- इस छिलके को तुम्हारे यहां किस काम में लाया जाता है?
- गन्ने के छिलके और किस काम आ सकते हैं? तुम इनका अपने लिए क्या–क्या उपयोग सोच सकते हो? (घर में, स्कूल में, खेलते समय, कहीं भी)
- शक्कर की मिलों में बनी शक्कर का आधा से अधिक हिस्सा (55 प्रतिशत) सरकार ख़रीद लेती है। 'लेवी शुगर' कहलानेवाली यह चीनी राशन की दुकानों से बिकती है और सरकार के गोदामों में जमा होती है। बाक़ी की चीनी व्यापारी ख़रीदकर दुकानों से बेचते हैं।
- मुझे इस बात से बहुत हैरानी हुई कि सफ़ेद चीनी पीले रंग के रस से बनती है। तुम्हें कौन–सी बात में मज़ा आया? शक्कर की कहानी में से कोई एक पहलू या विषय चुनो। इस पर एक पैराग्राफ लिखो।
- रज्जू 10 किलो गन्ने लेकर आया। टिल्लू भी गन्ने लेकर आया पर वह भूल गया कि गन्ने कितने किलो थे। दोनों के गन्नों में से कुल 2.5 किलो शक्कर बनी तो बताओ कि टिल्लू कितने किलो गन्ने लाया?
- मान लो कि एक बोरी में 100 किलो शक्कर आती है। माला के कारख़ाने में 4000 किलो शक्कर

बनी। यह बताओ कि उसे शक्कर भरने के लिए कितनी बोरियां खरीदनी पड़ेंगी?

- मान लो कि तुमने अपने कारख़ाने में एक टन शक्कर बनाई। जब तुमने अपने दोस्त को यह बात बताई तो उसने कहा 'मुझे तो पता नहीं टन कितना होता है। मुझे बताओ कि कितने किलो शक्कर बनी? या कितने बोरे भरे? तो तुम उसे क्या बताओगे।
- इसी तरह मुझे बताओ कि 5000 ग्राम शक्कर कितने किलो चीनी के बराबर है?
- नीचे ऐसे और सवाल दिए हैं। उन्हें भी करके देखो।

24 किलो शक्कर = ————————— ग्राम शक्कर

——————— किलो शक्कर = 2 टन शक्कर

———————किलो शक्कर = ————क्विंटल शक्कर

खाली जगह में ऐसे और सवाल बनाओ और दोस्तों/सहलियों के साथ करो।

- बताओ कि जो वाक्य नीचे लिखे हैं वे सही हैं या ग़लत। ग़लत वाक्यों को सही करके लिखो।

अ— कारख़ाने में बड़े पैमाने पर वस्तु का उत्पादन होता है।

ब— चीनी केवल गन्ने से बनाई जाती है।

स— गन्ने की कटाई एक ही दिन में करनी ज़रूरी है।

द— कारख़ाने में बहुत से लोग काम करते हैं।

ई— कपड़ा पेड़ की लुगदी से बनता है।

- गन्ने से शक्कर बनने की क्रिया के मुख्य चरणों को रेखांकित करो।
- गन्ना बोने से लेकर शक्कर बनने तक की प्रक्रिया के मुख्य हिस्सों के चित्र बनाओ।
- कमल ने कहा कि बस—स्टैंड पर बहुत से लोग काम करते हैं। यहां से बहुत से बसें, जो बड़ी—बड़ी मशीनें हैं, चलती हैं। बसों में बहुत से यात्री चलते हैं। इसलिए बस—स्टैंड भी एक कारख़ाना है।

रेशमा ने कहा, नहीं यह ठीक नहीं है। बस—स्टैंड कारख़ाना नहीं है।

इसके बारे में तुम क्या सोचते हो? अपने उत्तर का कारण भी लिखो।

साभार— 'कुछ करें' विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर का प्रकाशन।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

फ़सल

हल की तरह
कुदाल की तरह
या खुरपी की तरह
पकड़ भी लूं क़लम को
तो भी फ़सल काटने को
मिलेगी नहीं हमको।

हम तो ज़मीन ही तैयार कर पायेंगे
क्रान्तिबीज बोने कुछ बिरले ही आयेंगे।
हरा–भरा वही करेंगे मेरे श्रम को
सिलसिला मिलेगा आगे मेरे क्रम को।

कल जब फ़सल उगेगी लहलहायेगी
मेरे न रहने पर भी हवा से इठलायेगी
तब मेरी आत्मा सुनहरी धूप बन बरसेगी
जिन्होंने बीज बोया था उन्हीं के चरन परसेगी।

काटेंगे उसे जो, फिर वही उसे बोयेंगे
हम तो कहीं धरती के नीचे दबे सोयेंगे।

साभार : प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना

विद्या भवन गांधी–शिक्षा अध्ययन शिक्षक महाविद्यालय का विश्व मंगलम्, अनेरा (गुजरात) में आयोजित वनशाला शिविर की झलकियां

24–28 जनवरी 2011